कामना

जयशंकर 'प्रसाद'

हिन्दी-पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय

१।)

प्रकाशक
वैदेहीशरण
अध्यक्ष—हिन्दी-पुस्तक-भंडार
लहेरियासराय (बिहार)

गंगा-दसहरा, १९८४
१।)

मुद्रक
माधव विष्णु पराड़कर
ज्ञानमंडल-यन्त्रालय, कबीरचौरा, काशी

पात्र

सन्तोष

बिनोद

विलास

विवेक

शान्तिदेव

दम्भ

दुर्वृत्त

क्रूर

वृद्ध, युवा, बालक, नागरिक, सैनिक, आगन्तुक, द्वीपवासी, शिकारी, बन्दी, आठ वर्ष का एक बालक।

पात्रियाँ

कामना

लीला

लालसा

करुणा

प्रमदा

वनलक्ष्मी

महत्त्वाकांक्षा

माता, बालिका, किशोरी, स्त्रियाँ आदि

कामना

कामना

पहला अंक

पहला दृश्य

स्थान—फूलों का द्वीप, समुद्र का किनारा

(वृक्ष की छाया में लेटी हुई कामना)

कामना—ऊषा के अपांग में जागरण की लाली है। दक्षिण-पवन शुभ्र मेघमाला का अंचल हटाने लगा। पृथ्वी के प्रांगण में प्रभात टहल रहा है, क्या ही मधुर है; और संतोष भी मधुर है। विशाल-जलराशि के शीतल अंक से लिपटकर आया हुआ पवन इस द्वीप के निवासियों को कोई दूसरा संदेश

नहीं सुनाता, केवल शांति का निरंतर संगीत सुनाया करता है। सन्तोष ! हृदय के समीप होने पर भी दूर है, सुन्दर है, केवल आलस के विश्राम का स्वप्न दिखाता है। परन्तु अकर्मण्य सन्तोष से मेरी पटेगी ? नही ! इस समुद्र मे इतना हाहाकार क्यो है ? उँह, ये कोमल पत्ते तो बहुत शीघ्र तितर-बितर हो जाते है। (बिछे हुए पत्तो को बैठकर ठीक करती है) यह लो, इन डालो से छनकर आई हुई किरणें इस समय ठीक मेरी आँखो पर पड़ेगी। अब दूसरा स्थान ठीक करूँ, बिछावन छाया मे करूँ। (पत्तों को दूसरी ओर बटोरती है) घड़ी-भर चैन मे बैठने मे भी झंझट है।

(दो-चार फूल वृक्ष के चू पडते हैं—व्यस्त होकर वृक्ष की ओर सरोष देखने लगती है)

(तीन स्त्रियों का कलसी लिये हुए प्रवेश)

१—क्यों बिगड़ रही हो कामना ?

२—किस पर क्रोध है कामना ?

३—कितनी देर से यहाँ हो कामना ?

कामना—(स्वगत) क्यों उत्तर दूँ ? सिर खाने के लिए यहाँ भी सब पहुँची !

(मुँह फिरा लेती है और बोलती नहीं)

१—क्यों कामना, क्या स्वस्थ नहीं हो ?

२—आहा ! बेचारी कुम्हला गई है !

३—धूप में क्यों देर से बैठी है। चल—

कामना—मैं नहीं चाहती कि तुम लोग मुझे तंग करो। मैं अभी ठहरूँगी।

२—दुलारी कामना, तू क्यों अप्रसन्न है ?

३—प्यारी कामना, तू क्यों नहीं घर चलती ?

१—काम जो करना होगा ! (सँभलकर) अच्छा कामना, जब तक तेरा मन ठीक नहीं है, तेरा काम मैं ठीक कर दिया करूँगी।

२—तेरा कपास मैं ओट दिया करूँगी।

३—सूत मैं कात लिया करूँगी।

१—बुनना और पीने का जल भरना इत्यादि मैं कर दूँगी। तू अपना मन ठीक कर, चित्त का चैन दे। कामना, तेरी-सी लड़की तो इस द्वीप-भर में कोई नहीं है।

कामना—क्या मैं रोगी हूँ जो तुम लोग ऐसा कह रही हो ? मैं किसी का उपकार नहीं चाहती। तुम सब जाओ, मैं थोड़ी देर में आती हूँ।

(तीनों स्त्रियाँ जाती हैं, कामना उठकर टहलती है)

कामना—यह मुरझाये हुए फूल, उँह—कलियाँ चुनो, उन्हे गूँधो और सजाओ, तब कहीं पहनो। लो, इन्हे रूठने मे भी देर नहीं लगती। जब देखो, सिर झुका लेते हैं; सुगंध और रुचि के बदले इनमे एक दबी हुई गर्म साँस निकलने लगती है। (हार तोड़कर फेंकती हुई और कुछ कहा चाहती है। दो मनुष्यों को आते देख चुप हो जाती है। वृक्ष की ओट में चली जाती है। एक हल और दूसरा फावड़ा लिये आता है)

सन्तोष—भाई, आज धूप मालूम भी नही हुई।

विनोद—हमे तो प्यास लग रही है। अभी तो दिन भी नही चढ़ा।

सन्तोष—थोड़ी देर छाँह में बैठ जायँ—बातें करें।

विनोद—काम तो हम लोगों का हो चुका, अब करना ही क्या है।

सन्तोष—अभी देव-परिवार के लिए जो नई भूमि तोड़ी जा रही है, उसमे सहायता के लिए चलना होगा।

विनोद—खेतो मे बहुत अच्छी उन्नति है। अपने से बहुत बच रहेगा। आवश्यकता होगी, तो दूँगा।

सन्तोष—अरे, साल मे बहुत सार्वजनिक काम आ पड़ते हैं, तो उनके लिए संग्रहालय में भी तो रखना चाहिये।

विनोद—हाँ जी, ठीक कहा।

(समुद्र की ओर देखता है)

सन्तोष—क्यो जी, इसके उस पार क्या है?

विनोद—यही नही समझ मे आता कि वह पार है या नहीं।

सन्तोष—ओह! जहाँ तक देखता हूँ, अखंड जलराशि है।

विनोद—क्या कभी इसमे चलकर देखने की इच्छा होती है।

सन्तोष—इच्छा तो होती है, पर लौटकर न आने के संदेह से साहस नहीं बढ़ता। ये हरे-भरे खेत, छोटी-छोटी पहाड़ियों से ढुलकते—मचलते हुए झरने, फूलों से लदे हुए वृक्षों की पंक्ति, भोली गउओं और उनके प्यारे बच्चों के झुंड, इस बीहड़ पागल और कुछ न समझने वाले उन्मत्त समुद्र में कहाँ मिलेंगे। ऐसी धवल धूप, ऐसी तारों से जगमगाती रात वहाँ होगी?

विनोद—मुझे तो विश्वास है कि कदापि न होगी

सन्तोष—तब जाने दो, उसकी चर्चा व्यर्थ है क्यों जी, आज उपासना में वह कामना नहीं दिखाई पड़ी।

सन्तोष—क्या तुम उससे व्याह किया चाहते हो?

विनोद—उसकी बातें, उसकी भाव-भंगियाँ कुछ समझ मे नही आती। मै तो उससे अलग रहा चाहता हूँ।

विनोद—मेरी गृहस्थी तो व्याह के बिना अधूरी जान पड़ती है। मै तो लीला की सरलता पर प्रसन्न हूँ।

सन्तोष—तुम जानो। अच्छा होता यदि तुम उसी से व्याह कर लेते?

विनोद—और तुम!

सन्तोष—मैं सन्तुष्ट हूँ—मुझे व्याह की आवश्यकता नहीं।

विनोद—अच्छी बात है। चलो, अब घर चलें।

(दोनो जाते हैं। कामना आती है)

कामना—हाँ, तुम हिचकते हो, और मैं तुमसे घृणा (जीभ दबाती है)। हैं! यह क्या? इसके क्या

अर्थ ? मैं क्या इस देश की नहीं हूँ। क्या मुझसे कोई दूसरी शक्ति है, जो मुझे इनसे भिन्न रक्खा चाहती है। कुछ मैं ही नही, ये लोग भी तो मुझको इसी दृष्टि से देखते है। (लीला का प्रवेश)

लीला—बहन, क्या अभी घर न चलोगी ?

कामना—तू भी आ गई ?

लीला—क्यो न आती ?

कामना—आती, पर मुझसे यह प्रश्न क्यो करती है ?

लीला—बहन, तू कैसी होती जा रही है। तेरा चरखा चुपचाप मन मारे बैठा है। तेरी कलसी खाली पड़ी है। तेरा बुना हुआ कपड़ा अधूरा पड़ा है। तेरी–

कामना—मेरा कुछ नही है, तू जा। मै चुप रहा चाहती हूँ, मेरा हृदय रिक्त है। मैं अपूर्ण ँ।

लीला—बहन, मैंने कुछ नहीं समझा।

कामना—तू कुछ न समझ, बस, केवल चली जा।

(लीला सिर झुकाकर चली जाती है)

—मै क्या चाहती हूँ ? जो कुछ प्राप्त है, इससे भी महान्। वह चाहे कोई वस्तु हो। हृदय को कोई करो रहा है। कुछ आकांक्षा है, पर क्या है ? यह

किसी को विवरण देना नहीं चाहती। केवल वह पूर्ण हो, और वहाँ तक, जहाँ तक कि उसकी इयत्ता हो। बस—

(दूर पर वंशी की ध्वनि। कामना इधर-उधर चौंककर देखने लगती है। समुद्र में एक छोटी सी नाव आती दिखाई पड़ती है। एक युवक बैठा डाँड़ चला रहा है। कामना आश्चर्य से देखती है। नाव तीर पर आकर लगती है)

—हैं, यह कौन! मै क्यों झुकी जा रही हूँ? और, सिर पर इसके क्या चमक रहा है, जो इसे बड़ा प्रभावशाली बनाये है। इसका व्यक्तित्व ऐसा है कि मै इसके सामने अपने को तुच्छ बना दूँ, और इसे समर्पित हो जाऊँ।

(कुछ सोचती है। युवक स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखता हुआ बाँसुरी बजाता है। कामना उठती और फूल इकट्ठे करती है। अकस्मात् उसके ऊपर बिखेर देती है। युवक पैर उठाता है कि नीचे उतरे। कामना उसको हाथ पकड़कर नीचे ले आती है। युवक अपना स्वर्ण-पट्ट खोलकर युवती कामना के सिर पर बाँधता है, और वह आलिंगन करती है)

[पटाक्षेप]

दूसरा दृश्य

स्थान—वृद्ध-कुंज

(एक परिवार बैठा बातचीत कर रहा है)

बालिका—मा, कोई कहानी सुना।

बालक—नही मा, तू बहन से कह दे, वह मेरे साथ दौड़े।

माता—थोड़ा-सा बुनना और है। मैं कहानी भी सुनाऊँगी, और तुझे दौड़ाऊँगी भी। आज तूने कम खाया, क्या भूख नहीं थी?

बालिका—मा, आज यह दौड़ न सका, इसी से—

माता—तो तूने इसे क्यों नही खेल खिलाया?

बालक—मा, आज वहाँ लड़कों में कामना नहीं आई। इससे बहुत कम खेल-कूद हुआ।

(एक स्त्री का प्रवेश)

स्त्री—अजी कहाँ हो बहन! कुछ सुना?

माता—क्यों बहन, क्या है? आओ, बैठो।

स्त्री—अरे आज तो एक नई बात हुई है।

माता—क्या?

स्त्री—समुद्र के उस पार से एक युवक आया है।

माता—सपना तो नहीं देख रही है।

स्त्री—क्या! मैं अभी देखे आ रही हूँ।

माता—कहाँ है? वह कहाँ बैठा है?

स्त्री—कामना के घर में। उसी के साथ तो वह द्वीप में आया है।

माता—वह उसे क्यों ले आई? क्या किसी ने रोका नहीं? उपासना-मंदिर से क्या आदेश मिला कि वह नवीन मनुष्य इस देश में पैर रखने का अधिकारी हुआ, क्योंकि यह एक नई घटना है।

स्त्री—आजकल तो उपासना का नेतृत्व उसी कामना के हाथ में है, तब दूसरा कौन आदेश देगा?

बालक—वह कैसा है मा?

बालिका—क्या हमीं लोगों के-जैसा है?

स्त्री—और तो सब कुछ हमीं लोगों का-सा है। केवल एक चमकीली वस्तु उसके सिर पर थी। कामना कहती है, अब उसने वह मुझे दे दी है। उसे सिर में बाँधकर कामना बड़ी इठलाती हुई सबसे बातें कर रही है। **(एक किशोरी बालिका का प्रवेश)**

किशोरी—सब लोग चलो, आगंतुक के लिए एक

वर की आवश्यकता है। कामना ने सहायता चाही है।

(सब जाते है। लीला और सन्तोष का प्रवेश)

लीला—हाँ प्रियतम ! इस पूर्णिमा को हम लोग एक हो जायँगे।

सन्तोष—परंतु तुम्हारी सखी तो—

लीला—अरे सुना है, उसने भी वरण किया है।

सन्तोष—किसे ? वह तो इससे अलग रहा चाहती है।

लीला—कोई समुद्र-पार से आया है।

सन्तोष—हाँ, आने का समाचार तो मैने भी सुना है; पर उस नवागंतुक से क्या इस देश की कुमारी ब्याह करेगी ?

लीला—क्यो, क्या ऐसा नही हो सकता ?

सन्तोष—अभी तक तो नही सुना, क्या किसी पुरानी कहानी मे तुमने ऐसा सुना है ?

लीला—परंतु कोई आया भी तो नहीं था।

सन्तोष—यह तो ठीक नहीं है। सुना है, उसका नाम विलास है।

लीला—ठीक तो नही है; पर होगा यही।

सन्तोष—यदि विरोध हुआ, तो तुम क्या करोगी ?

लीला—मेरी सखी है। आज तक तो इस द्वीप मे विरोध कभी नही हुआ !

सन्तोष—तो मैं विचार करूँगा। तुम्हारे पथ पर मैं चल सकूँगा ?

लीला—(आश्चर्य से) क्या इसमें भी सन्देह है ?

सन्तोष—हाँ लीला—

लीला—नहीं-नहीं, ऐसा न कहो—

(दोनों जाते हैं)

तीसरा दृश्य

स्थान—कुज-वन

(कामना के साथ बैठा हुआ विलास)

कामना—प्रिय, अब तो तुम हम लोगों की बातें अच्छी तरह समझने लगे। जो लोग मिलने आते हैं, उनसे बातें भी कर लेते हो।

विलास—हाँ, अब तो कोई अड़चन नहीं होती प्रिये ! तुम लोग कुछ गाती नहीं हो क्या ?

कामना—गाती क्यों नही हैं, पर तुम्हे हमारे गाने अच्छे लगेंगे ?

विलास—क्यों नहीं, सुनूॅ तो ।

(कामना गाती है और विलास बाँसुरी बजाता है)

सघन वन-वल्लरियों के नीचे
उषा और सन्ध्या-किरनों ने तार बीन के खींचे
हरे हुए वे गान जिन्हे मैंने आँसू से सींचे
स्फुट हो उठी मूक कविता फिर कितनों ने दृग मींचे
स्मृति-सागर मे पलक-चुलुक से बनता नहीं उलीचे
मानस-तरी भरी करुना-जल होती ऊपर-नीचे

विलास—कामना ! कामना ! तुम लोगों का ऐसा गान है ! इसे गान कहते है ! मैंने तो ऐसा गान कभी नहीं सुना !

कामना—(आश्चर्य) क्या ऐसा गान कहीं नहीं होता ?

विलास—इस लोक में तो नहीं ।

कामना—तब तो बड़ी अच्छी बात हुई ।

विलास—क्यों ?

कामना—मैं नित्य सुनाऊँगी ।

विलास—क्यों प्रिये, तुम्हारे देश के लोग मुझसे अप्रसन्न तो नहीं है ? क्या तुम—

कामना—इसमें अप्रसन्न होने की तो कोई बात नहीं है। यह तो इस द्वीप का नियम है कि प्रत्येक स्त्री-पुरुष स्वतंत्रता से जीवन-भर के लिए अपना साथी चुन ले।

विलास—क्या तुम्हें किसी का डर नहीं है ?

कामना—(अल्हड़पन से) डर ! डर क्या है ?

विलास—क्या तुम्हारे ऊपर किसी की आज्ञा नहीं है ?

कामना—हाँ है, नियम की। वह तुम्हारे लिए टूट नहीं रहा है। और, इस समय तो मैं ही इस द्वीप-भर की उपासना का नेतृत्व कर रही हूँ। मेरे लिए कुछ विशेष स्वतंत्रता है।

विलास—क्या ऐसा सदैव रहेगा ?

कामना—(चौंककर) क्या मेरे जीवन-भर ? नहीं, ऐसा तो नहीं है, और न हो सकता है।

विलास—(गम्भीरता से) क्यों नहीं हो सकता ? हमारे देश में तो बराबर होता है।

कामना—(प्रसन्नता और घबराहट से) तो क्या मेरे लिए यहाँ भी वह सम्भव है ?

विलास—उद्योग करने से होगा।

कामना—चलो, उस शिलाखंड पर अच्छी छाया है, वहीं बैठें।

(हाथ पकड़कर उठाती है। दोनो वहीं जाकर बैठते हैं)

विलास—कामना, तुम लोगो की कोई कहानी है ?

कामना—है क्यो नहीं।

विलास—कुछ सुनाओ। इस द्वीप की कथा मै सुनना चाहता हूँ।

कामना—(आकाश की ओर दिखाकर) हम लोग बड़ी दूर से आये है। जब विलोड़ित जलराशि स्थिर होने पर यह द्वीप ऊपर आया, उसी समय हम लोग शीतल तारकाओ की किरणो की डोरी के सहारे नीचे उतारे गये। इस द्वीप मे अब तक तारा की ही संतानें बसती है।

विलास—क्यो यह जाति उतारी गई ?

कामना—वहाँ चुपचाप बैठने से यह संतुष्ट नहीं थी। पिता ने खेल के लिए यहाँ भेज दिया। इन

तारा की संतानों का खेल एक बड़े छिद्र से पिता देखा करते हैं।

विलास—कौन-सा छिद्र ?

कामना—वही, जिससे दिन हो जाता है। पिता का असीम प्रकाश उससे दिखलाई पड़ता है; क्योंकि वह केवल आलोक है। रात को झँझरीदार परदा खींच लेता है। वहीं कहीं-कहीं से तारे चमकते हैं। यह सब उसी लोक का प्रकाश है।

विलास—अच्छा, तो वहाँ जाते कैसे हैं ?

कामना—पिता की आज्ञा से, कभी छोटी, कभी बड़ी एक राह खुलती है, और किसी दिन बिलकुल नहीं, उसे चंद्रमा कहते हैं। अपने शीतल पथ से थकी हुई तारा की संतान अपने खेल समाप्त कर उसी से चली जाती है।

विलास—(आश्चर्य से) भला तारों की राह से ये क्यों भेजे जाते हैं ?

कामना—यह खिलवाड़ी और मचलने वाली संतान थका देने के लिए भेजी जाती है। हमारे अत्यंत प्राचीन आदेशों मे तो यही मिलता है, ऐसा ही हम लोग जानते है।

(दूर एक बड़ा सुरीला पक्षी बोलता है। कामना घुटने टेक कर सिर झुका लेती और चुपचाप उसका शब्द सुनती है)

विलास—कामना! यह क्या कर रही हो?

कामना—(उठकर) पिता का संदेश सुन रही थी। मैं उपासना-गृह में जाती हूँ, क्योंकि कोई नवीन घटना होने वाली है। तुम चाहे ठहरकर आना।

(चली जाती है)

विलास—आश्चर्य! कैसी प्रकृति से मिली हुई यह जाति है! महत्त्व और आकांक्षा का, अभाव और संघर्ष का लेश भी नहीं है। जैसे शैल-निवासिनी सरिता, पथ के विषम ढोकों को, विघ्न-बाधाओं को भी अपने सम और सरल प्रवाह तथा तरल गति से ढकती हुई बहती रहती है, उसी प्रकार यह जाति, जीवन की वक्र रेखाओं को सीधी करती हुई, अस्तित्व का उपभोग हँसती हुई कर लेती है। परंतु ऐसे—(चुप होकर सोचने लगता है) ऊहूँ, करना होगा। ऐसी सीधी जाति पर भी यदि शासन न किया, तो मनुष्य ही क्या? इनमें प्रभाव फैलाकर अपने नये और व्यक्तिगत महत्ता के प्रलोभन वाले विचारों का प्रचार करना होगा। जान पड़ता है कि किसी गुप्त संकेत पर ये

लोग प्राचीन प्रथा के अनुसार केवल उपासना के लिए किसी के नेतृत्व मे अनुसरण करते है। सम्भवतः जब तक लोग उसकी कोई अयोग्यता न देख लेंगे, तब तक उसी को नेता मानते रहेंगे। भाग्य से आज-कल कामना ही है; परंतु मेरे कारण शीघ्र इसको अपने पद से हटना होगा। तो जब तक यह इस पद पर है, उसी बीच में अपना काम कर लेना होगा।

(दूर पर एक स्त्री की छाया देख पड़ती है)

छाया—मूर्ख! अपने देश की दरिद्रता से विताडित और अपने कुकर्मों से निर्वासित साहसी! तू राजा बना चाहता है? तो स्मरण रख, तुझे इस जाति को अपराधी बनाना होगा। जो जाति अपराध और पापो से पतित नही होती, वह विदेशी ता क्या, किसी अपने सजातीय शासक की भी आज्ञाओ का बोझ

(विलास जाता है । छाया अदृश्य हो जाती है)
(एक ओर से कामना, दूसरी ओर से विनोद का प्रवेश)

कामना—विनोद ! तुम इधर लीला से मिले थे? वह तुम्हे एक दिन खोज रही थी ।

विनोद—सन्तोष के कारण मै उससे नही मिलता । आज उसका ब्याह होने वाला था न !

कामना—वह सन्तोष से न ब्याह करेगी ? चलो, फूलो का मुकुट पहनाकर तुम्हे ले चलूँ ।

विनोद—मै ?

कामना—हाँ !

चौथा दृश्य

स्थान—लीला का कुटीर

(फूल-मंडप मे लीला)

लीला—आज मिलन-रात्रि है । आज दो अधूरे मिलेंगे, एक पूरा होगा । मधुर जीवन-स्रोत को संतोष की शीतल छाया मे बहा ले जाना आज से हमारा कर्तव्य होना चाहिये । परंतु मुझे वैसी आशा नही । मेरा हृदय व्याकुल है, चंचल है, लालायित है, मेरा सब कुछ अपूर्ण है केवल उसी चमकीली वस्तु

के लिए। मेरी सखी कामना! आह, मुझे भी एक वैसी ही मिलनी चाहिये। (वन-लक्ष्मी का प्रवेश)

लीला—तुम कौन ?

वन-लक्ष्मी—मै वन-लक्ष्मी हूँ।

लीला—क्यों आई हो ?

वन-लक्ष्मी—इस द्वीप के निवासियो मे जब ब्याह होता है, तब मै आशीर्वाद देने आती हूँ। परंतु किसी के सामने नही।

लीला—फिर मेरे लिए ऐसी विशेषता क्यों ?

वन-लक्ष्मी—अभिशाप देने के लिए।

लीला—हम 'तारा की संतान' हैं। हमे किसी के अभिशाप से क्या सम्बन्ध। और, मैने किया ही क्या है जो तुम अभिशाप कहकर चिल्लाती हो। इस द्वीप मे आज तक किसी को अभिशाप नहीं मिला, तो मुझे ही क्यो मिले ?

वन-लक्ष्मी—मैने भूल की। अभिशाप तो तुम स्वयं इस द्वीप को दे रही हो।

लीला—जो बात मै समझती नहीं, उसी के लिए क्यो मुझे—

वन-लक्ष्मी—जो वस्तु कामना को अकस्मात

मिली है, उसी के लिए तुम ईर्षा कर रही हो, वैसी ही तुम भी चाहती हो।

लीला—तो ऐसा चाहना क्या कोई अभिशाप, ईर्षा, या और क्या-क्या तुम कह रही हो, वही है?

वन-लक्ष्मी—आज तक इस द्वीप के लोग 'यथा-लाभ-संतुष्ट' रहते थे, कोई किसी का मत्सर नही करता था। परंतु इस विष का—

लीला—बस करो, मै तुम्हारे अभिशाप, ईर्षा और विष को नही समझ सकी। यदि मै किसी अच्छी वस्तु को प्राप्त करने की चेष्टा करूँ, तो उसकी गिनती तुम अपने इन्ही शब्दो मे करोगी, जिन्हे किसी ने सुना नहीं था। अभिशाप, मत्सर, ईर्षा और विष।

वन-लक्ष्मी—अच्छी वस्तु तो उतनी ही है, जितनी की स्वाभाविक आवश्यकता है। तुम क्यो व्यर्थ अभावो की सृष्टि करके जीवन को जटिल बना रही हो? जिस प्रकार ज्वालामुखियाँ पृथ्वी के नीचे दबा रक्खी गई है, और शीतल स्रोत पृथ्वी के वक्ष-स्थल पर बहा दिये गये है, उसी प्रकार ये सब 'तारा की संतानो' के कल्याण के लिए गाड़ दिये गये है। यह ज्वाला सोने के रूप मे सबके हाथो मे खेलती

और मदिरा के शीतल आवरण से कलेजे में उतर जाती है।

लीला—मदिरा ! क्या कहा ?

वन-लक्ष्मी—हाँ-हाँ, मदिरा, जो तुम्हारे उस पात्र में रक्खी है। (पात्र की ओर संकेत करती है)

लीला—क्या इसे कहती हो ? (पात्र उठा लेती है) इसे तो सखी कामना ने ब्याह के उपलक्ष में भेजा है। और सोना क्या ?

वन-लक्ष्मी—वही, जिसके लिए लालायित हो।

लीला—तुम वन-लक्ष्मी हो, तभी—

वन-लक्ष्मी—क्या मैं भी उस चमकीली वस्तु के लिए शीतल हृदय में जलन उत्पन्न करूँ ?

लीला—जलन तो है ही। तुम्हारे पास नहीं है, इसी लिए मुझे भी उससे वंचित रखना चाहती हो। कामना के पास है, और मैं उसे पाने का प्रयास कर

हमारे द्वीप मे लोहे का उपयोग सृष्टि की रक्षा के लिए है। उसे संहार के लिए मत बना। जो वस्तु खेती और हिंस्र पशुओ से सरल जीवों की रक्षा का साधन है, उसे नरक के हाथ, हिंसा की उँगलियाँ न बना दें। कामना को उस विदेशी युवक के साथ महार्णव मे विसर्जन कर दे। उसे दूसरे देश चले जाने के लिए भी कह दे; परंतु—

लीला—वन-लक्ष्मी हो ? क्या तुम ऐसा निष्ठुर निर्देश करती हो कि मै अपनी सखी को—

वन-लक्ष्मी—हाँ ! हाँ ! उस अपनी सखी से दूर रह ! केवल तू ही उस अग्नि का ईंधन बनकर सत्या-नाश न फैला। महार्णव से मिलती हुई तरंगिणी के जल मे चुटकी लेता हुआ, शीतल और सुगंधित पवन इस देश मे बहने दे। इस देश के थके कृषको को विनोद-पूर्ण बनाने के लिए, प्रत्येक पथिक पर, कल्याण के सदृश, यहाँ के वृक्षो को फूल बरसाने दे। आग, लोहे और रक्त की वर्षा की प्रस्तावना न कर। इस विश्वम्भरा को, इस जननी को, धातु निकालकर, खोखली और निर्बल बनाने का समारम्भ होने से रोक। मेरी प्यारी लीला ! मान जा। कहे जाती हूँ,

जिस दिन तूने उस चमकीली वस्तु के लिए हाथ पसारा, उसी दिन इस देश की दुर्दशा का प्रारम्भ होगा। (चली जाती है)

लीला—(कुछ देर बाद) आश्चर्य ! आज तक तो वन-लक्ष्मी किसी से नही मिली थी। अब मै क्या करूँ ? चलकर कामना से कहूँ, या उपासना-गृह में ही सबके सामने कहूँ। (सोचती है) नही, अलग ही कहना ठीक होगा। तो चलूँ, (रुककर) यह लो, कामना तो स्वयं आ रही है।

(कामना का प्रवेश)

कामना—लीला, सखी, तू कैसी हो रही है ?

लीला—मै तो तेरे ही पास आ रही थी। बड़े आश्चर्य की बात है।

कामना—आश्चर्य की कई बाते आजकल इस द्वीप में हो रही हैं। पर उनसे क्या ? पहले मेरी ही बात सुन ले। मै विलास के साथ बाते कर रही थी कि पक्षियों का संकेत हुआ। मै उपासना-गृह में गई। मुझे नियमानुसार यह विदित हुआ कि इस देश पर कोई आपत्ति शीघ्र आया चाहती है। परंतु

मैं तनिक भी विचलित न हुई। मैं तो तेरे ब्याह का सिंगार करने आई हूँ। तू कह—

लीला—आज वन-लक्ष्मी मुझसे न-जाने कहाँ-कहाँ की कैसी-कैसी बातें कह गई।

कामना—वन-लक्ष्मी! भला, वह तेरे सामने आई! आश्चर्य! क्या कहा?

लीला—कहा कि कामना से देश का सत्यानाश होगा। तू उसका साथ न दे, और उस चमकीली वस्तु की चाह कभी न करना, जैसी कामना के पास है; क्योंकि वह ज्वाला है। और भी न-जाने क्या-क्या कह गई।

कामना—हूँ। तूने क्या कहा?

लीला—मैंने कहा कि वह मेरी सखी है, मैं उसे न छोड़ूँगी। (आलिंगन करती है)

कामना—प्यारी लीला, वैसी मैं तुझे अवश्य दिलाऊँगी, अधीर न हो। तू जैसे भ्रांत हो गई है। वह पेया, जो मैंने भेजी है, कहाँ है? थोड़ी उसमें से पी ले।

लीला—ओ! उसे तो और भी मना किया है।

कामना—(हँसती हुई पात्र उठाकर) अरे ले

भी, अभी थकावट दूर होती है। (लीला और कामना पीती है)

लीला—बहन, इसके पीते ही तो मन दूसरा हुआ जाता है।

कामना—बड़ी अच्छी वस्तु है।

लीला—ऐसी पेया तो नहीं पी थी। यहाँ कहाँ से ले आई ?

कामना—एक दिन मै और विलास, दोनो, नदी के किनारे-किनारे बहुत दूर निकल गये। फिर नदी से भी दूर चले गये। वहाँ प्यास लगी; परंतु नदी तक लौटने में विलम्ब होता। एक तरबूज आधा पड़ा था, उसमे सूर्य की गर्मी से तपा हुआ उसी का रस था। हम दोनो ने आधा-आधा पी लिया। बड़ा आनंद आया। अब उसी रीति से बनाया करती हूँ।

लीला—(मद-विह्वल होती है) कामना, तू वन-लक्ष्मी है। वह जो आई थी, मुझे भुलाने आई थी। तू क्या है, सुगंध की लहर है। चाँदनी की शीतल चादर है। अः—(उठना चाहती है)

कामना—(लीला को बिठाकर) तू बैठ, आज

मिलन-रात्रि है। विनोद के आने का समय हो गया। मै दोनो को भेंट करके जाऊँगी।

लीला—विनोद! कौन! नही कामने! सन्तोष! मेरा प्यारा सन्तोष! तुमने तो व्याह न करने का निश्चय किया है?

कामना—कैसी है तू! मेरा निर्वाचित है! मै चाहे व्याह करूँ या नही, परन्तु वह तो सुरक्षित रहेगा—समझी लीला! तेरे लिए तो विनोद ही उपयुक्त है। सन्तोष मुझसे डरता है, तो मै भी उससे सबको डराऊँगी—विनोद को मै बुला आई हूँ। वह तेरा परम अनुरक्त है।

(लीला अवाक् होकर देखती है)

(फूलो के मुकुट से सजा हुआ विनोद आता है)

कामना—स्वागत!

लीला—विराजिये।

(सब बैठते है)

(कामना दो फूल के हार दोनों को पहनाती और पात्र लेकर दोनों को एक में पिलाती है। पीछे खड़ी होकर दोनों के सिर पर हाथ रखती है। तीनो के मुख पर तीव्र आलोक)

कामना—अखंड मिलन हो।

विनोद—उपासना-गृह में भी तो चलना होगा।

लीला—यह तो नियम है।

कामना—थोड़ी और पी लो, तो चलें। सब लोग एकत्र भी हो रहेंगे। परंतु देखो, जो मैं कहूँ, वही वही करना।

लीला और विनोद—वही होगा।

(दोनों पात्र खाली करके जाते हैं)

कामना—मेरे भीतर का बाँकपन सीधा हो गया है। मेरा गर्व उसके पैरों में लोटने लगा। मेरा लावण्य मुझी पर नमक छिड़क रहा है। वह अतिथि होकर आया, आज स्वामी है। व्योम-शैल से गिरती हुई चंद्रिका की धारा आकाश और पाताल एक कर रही है। आनंद का स्रोत बहने लगा है। इस प्रपात के स्वच्छ कणों से कुहासे के समान सृष्टि में अंधकार-मिश्रित आलोक फैल गया है। अंतःकरण के प्रत्येक कोने से असंतोष-पूर्ण तृप्ति की स्वीकार-सूचनायें मिल रही हैं। विलास! तुम्हारे दर्शन ने सुख भोगने के नये-नये आविष्कारों से मस्तिष्क भर दिया है।

क्रांति और श्रांति मिलने के लिए सकल इंद्रियाँ परिश्रम करने लगी है—विलास ! (गाती है)

"घिरे सघन घन नींद न आई
निर्दय भी न अभी आया
चपला ने इस अंधकार में
क्यों आलोक न दिखलाया
बरस चुकी रस-बूँद सरस हो
फिर भी यह मन कुम्हलाया
उमड़ चले आँखों के झरने
हृदय न शीतल हो पाया
—चलूँ उपासना-गृह में—(जाती है)
[पट-परिवर्तन]

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—उपासना गृह

(सामने धूनी में जलती हुई अग्नि । बीच में कामना स्वर्ण-पट्ट बाँधे । दोनों ओर द्वीप के नागरिक । सबके पीछे विलास)

कामना—पिता ! हम सब तेरी संतान हैं ।

(सब यही कहते हैं)

कामना—हमारी परस्पर की भिन्नता के अवकाश को तू पूर्ण बनाये रख, जिसमें हम सब एक हो रहें ।

सब—हम सब एक हो रहे ।

कामना—हमारे ज्ञान को इतना विस्तार न दे कि हम सब दूर-दूर हो जाँय। हम सबके समीप रहे।

सब—हम सबके समीप रहे ।

कामना—हमारे विचारो को इतना संकुचित न कर दे कि हम अपने ही मे सब कुछ समझ ले । सब मे तेरी सत्ता का भान हो ।

सब—सब मे तेरी सत्ता का भान हो । (घुटने टेकते है)

कामना—(उठकर) हम लोगो मे आज एक नवीन मनुष्य है । वह आप लोगो को पिता का एक संदेश सुनावेगा ।

एक वृद्ध—पवित्र पक्षियो के संदेश क्या अब बंद होगे ?

दूसरा—क्या मनुष्य से हम लोग संदेश सुनेंगे ?

तीसरा—कभी ऐसा नही हुआ ।

विलास—शांत होकर सुनिये । पवित्र उपासना-गृह मे मन को एकाग्र करके, विनम्र होकर, संदेश सुनिये । विरोध न कीजिये ।

पहला वृद्ध—इस उपद्रव का अर्थ ? विदेशी

युवक, तुम यहाँ क्या किया चाहते हो ? विरोध क्या ?

विनोद—सुनने मे बुराई क्या है ?

लीला—हमारे व्याह की उपासना यों उपद्रव में न समाप्त होनी चाहिये। आप लोग सुनते क्यों नहीं ?

कामना—मै आज्ञा देती हूँ कि अभी उपासना पूर्ण नही हुई ; इसलिए सब लोग संदेश को सावधान होकर सुने।

दो-चार वृद्ध—इस उन्मत्त कथा का कहीं अंत होगा ? कामना ! आज तुम्हे क्या हुआ है ? तुम केवल उपासना का नेतृत्व कर रही हो, आज्ञा कैसी ? वह क्यो मानी जाय ?

कई स्त्री-पुरुष—हम लोगो को यहाँ से चलना चाहिये, और कोई दूसरा व्यक्ति कल से उपासना का नेता होगा।

विलास—अनर्थ न करो, ईश्वर का कोप होगा।

(विलास के सकेत करने पर कामना अग्नि में राल डालती है)

विलास—ईश्वर है, और वह सबके कर्म देखता है। अच्छे कार्यों का पारितोषिक और अपराधों का

दंड देता है। वह न्याय करता है, अच्छे को अच्छा और बुरे को बुरा।

विवेक—परन्तु युवक, हम लोग आज तक उसे पिता समझते थे। और, हम लोग कोई अपराध नहीं करते। करते है केवल खेल। खेल का कोई दंड नहीं। यह न्याय और अन्याय क्या? अपराध और अच्छे कर्म क्या है, हम लोग नहीं जानते। हम खेलते है, और खेल में एक दूसरे के सहायक है, इसमे न्याय का कोई कार्य नहीं। पिता अपने बच्चों का खेल देखते है, फिर कोप क्यो?

विलास—यह तुम्हारी ज्ञान-सीमा संकुचित होने के कारण है। तुम लोग पुण्य भी करते हो, और पाप भी।

विवेक—पुण्य क्या?

विलास—दूसरो की सहायता करना इत्यादि। पाप है दूसरों को कष्ट देना, जो निषिद्ध है।

विवेक—परंतु निषेध तो हमारे यहाँ कोई वस्तु नहीं है। हम वही करते हैं, जो जानते हैं; और जो जानते हैं, वह सब हमारे लिए अच्छी बात है। केवल निषेध का घोर नाद करके तुम पाप क्यो प्रचा-

रित कर रहे हो ? वह हमारे लिए अज्ञात बात है। तुम ज्ञान को अपने लिए सुरक्षित रक्खो। यहाँ—

कामना—दिव्य पुरुष से केवल शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये, इतनी—

विनोद—हम आपके आज्ञाकारी है। आपके नेतृत्व-काल मे अपूर्व वस्तु देखने मे आई, और कभी न सुनी हुई बाते जानी गई। आप धन्य है!

एक—हम लोग भी स्वीकार ही करेंगे। तो अब सब लोग जायँ ?

विनोद—ब्याह का उपहार ग्रहण कर लीजिये।

कामना—वह ईश्वर की प्रसन्नता है। आप लोगो को उसे लेकर जाना चाहिये।

(विनोद और लीला सबको मदिरा पिलाते हैं)

कामना—है न यह उसकी प्रसन्नता ?

दो-चार—अवश्य, यह तो बड़ी अच्छी पेया है।

(सब मोह में शिथिल होते हैं)

—ईश्वर से डरना चाहिये, सदैव सत्कर्म—

एक—नही तो वह इसी ज्वाला के समान अपने क्रोध को धधका देगा।

दूसरा—और हम लोगो को दंड देगा।

विवेक—परंतु प्यारे बच्चो, वह पिता स्नेह करता है, यह हम लोग कैसे भूल जायँ, और उससे डरने लगें ?

कामना—तुम्हें प्रमाण मिलेगा कि हम लोगों में अपराध हैं; उन्हीं अपराधों से हम लोग रोगी होते और उसके बाद इस द्वीप से निकाल दिये जाते हैं। उन अपराधों को हमें धीरे-धीरे छोड़ना होगा।

विवेक—तो फिर सब कर्म केवल अपराध ही हो जायँगे—

और सब—हम लोग उन अपराधों को जानेंगे, और त्याग करेंगे। रोग और निकाले जाने से बचेंगे।

विलास—सबका कल्याण होगा।

(एक दूसरे से आलिंगन करते हुए मद्यपों की-सी प्रसन्नता प्रकट करते हुए जाते हैं)

विवेक—परिवर्त्तन! वर्षा से धुले हुए आकाश की स्वच्छ चन्द्रिका—तमिस्त्रा से—कुहू से बदल जायगी—बालकों के-से शुभ्र हृदय छल की मेघमाला से ढक जायँगे। (सोचता है)

विवेक—पिता! पिता! हम डरेंगे, तुमसे काँपेंगे? क्यों? हम अपराधी हैं। नहीं-नहीं, यह क्या अच्छी

बात है। यह क्या है? अब खेल समाप्त होने पर तुम्हारी गोद मे शीतल पथ से हम न जाने पावेगे। तुम दंड दोगे। नहीं, नहीं—ओह! न्याय करोगे? भयानक न्याय—क्योंकि हम अपराध करेगे, और वह न्याय होगा दंड—अह! उसने कहा कि तुम निर्जीव बनाकर इस द्वीप से निकाल दिये जाते हो, यही प्रमाण है कि तुम अपराधी हो। क्या हम अपराधी है? अपराध क्या पदार्थ है? क्षुद्र स्वार्थो से बने हुए कुछ नियमो का भंग करना अपराध होगा। यही न? परंतु हमारे पास तो कोई नियम ऐसे नही थे, जो कभी तोड़े जाते रहे हो। फिर क्यो यह अपराध हम पर लादा जा रहा है? पिता! प्रेममय पिता! हमारे इस खेल मे भी यह कठोरता, यह दंड का अभिशाप लगा दिया गया! हमारे फूलो के द्वीप मे किस निर्दय ने कॉटे बखेर दिये? किसने हमारा प्रभात का स्वप्न भंग किया? स्वप्न—आ! कुदृश्यो से थकी हुई ऑखों से चली आ—विश्राम! आ! मुझे शीतल अंक मे ले!—ऊँह! सो जाऊँ। (सोने की चेष्टा करता है। स्वप्न मे—स्वर्ग और नरक का दृश्य देखता हुआ अर्ध-निद्रित अवस्था में उठ खड़ा होता है)—

मै क्या-क्या कह गया। ये सब अभूतपूर्व बातें कहाँ से हमारे हृदय मे उठ रही हैं। परंतु, नहीं—यह तो प्रत्यक्ष है, दिखलाई पड़ रहा है कि ज्वाला और उसके पहले विष से मिला हुआ धुँआँ फैलने लगा है। जलाने वाली, दिग्दाह कराने वाली, अमृत होकर सुखभोग करने की इच्छा, इस पृथ्वी को स्वर्ग बनाने की कल्पना, इसे अवश्य नरक बनाकर छोड़ेगी। है! नरक और स्वर्ग। कहाँ है? ये क्यो मेरे हृदय में घुसे पड़ते हैं? काल्पनिक अत्यंत उत्त-मता, सुख-भोग की अनंत कामना, स्वर्गीय इंद्र-धनुष बनकर सामने आ गई है, जिसने वास्तविक जीवन के लिए इस पृथ्वी की दबी हुई ज्वालामुखियों का मुख खोल दिया है। हमारे फूलो के द्वीप के बच्चो! रोओगे इन कोमल फूलों के लिए, इन शीतल झरनो के लिए। पिता के दुलारे पुत्रो! तुम अपराधी के समान बेंत-से काँपोगे। तुम गोद मे नहीं जाने पाओगे। हा! मैं क्या करूँ—कहाँ जाऊँ?

(बड़बड़ाता हुआ जाता है)

छठा दृश्य

स्थान—कामना का मंदिर और नवीन ढंग का उपवन

(कामना और विलास)

विलास—बहुत-से लोग पेया माँगते है कामना!

कामना—तो कैसे बनेगी?

विलास—लीला स्वर्ण-पट्ट के लिए अत्यंत उत्सुक है।

कामना—उसे तो देना ही होगा।

विलास—स्वर्ण तो मैंने एकत्र कर लिया है, अब उसे बनाना है।

कामना—फिर शीघ्रता करो।

विलास—जब तक तुम रानी नहीं हो जाती, तब तक मै दूसरे को स्वर्ण-पट्ट नहीं पहनाऊँगा। केवल उपासना मे प्रधान बनने से काम न चलेगा। परंतु रानी बनने मे अभी देर है, क्योंकि अपराध अभी प्रकट नही है। उसका बीज सबके हृदयो मे है।

कामना—फिर क्या होना चाहिये?

विलास—आज सब को पिलाऊँगा। कुछ स्त्रियाँ भी रहेंगी न?

कामना—क्यों नहीं।

विलास—कितनी देर मे सब एकत्र होंगे ?

कामना—आते ही होंगे। मुझे तो दिखलाओ, तुमने क्या बनाया है, और कैसे बनाया ?

विलास—देखो, परंतु किसी से कहना मत।

(कामना आश्चर्य से देखती है। पर्दा हटाकर शराब की भट्टी और सुनार की धौंकनी दिखलाता है। गलाया हुआ बहुत-सा सोना रक्खा है। मंजूषा में से एक कंकण निकालकर कामना को दिखाता है)

लीला—(सहसा प्रवेश करके) सब लोग आ रहे हैं।

(विलास सब बंद कर लेता है, लीला की ओर क्रोध से देखता है। लीला संकुचित हो जाती है)

विलास—जब कह दिया गया कि तुम्हें भी मिलेगा, तब इतनी उतावली क्यों है ?

(विनोद भी आ जाता है)

कामना—विनोद और लीला हमारे अभिन्न हैं प्रिय विलास !

विलास—ईश्वर का यह ऐश्वर्य है, उसका अंग है। जब उसकी इच्छा होगी, तभी मिलेगा। जल्दी का काम नहीं। विनोद ! तुम्हें भी इसकी—

विनोद—मैंने भी बहुत-सी रेत इकट्ठी की है, परंतु बना न सका—मुझे नहीं, लीला को चाहिये।

विलास—(आश्चर्य और क्रोध प्रकट करते हुए) अच्छा, प्रतिज्ञा करो कि कामना जो कहेगी, वही तुम लोग करोगे, आज का रहस्य किसी से न कहोगे।

विनोद और लीला—हम दोनो दास हैं। किसी से न कहेंगे।

कामना—क्या कहा ?

दोनो—दास हैं। आपके दास हैं।

कामना—नहीं, नहीं, तुम इतने दीन होकर इस ज्वाला की भीख मत लो। इस द्वीप के निवासी—

विलास—ठहरो कामना, (विनोद से) तो तुम अपनी बात पर दृढ़ हो ? झूठ तो नहीं बोलते ?

लीला—झूठ क्या ?

विलास—यही कि जो कहते हो, उसे फिर न कर सको।

कामना—ऐसा तो हम लोग कभी नही करते। क्यो विनोद !

विलास—मै तुमसे नही पूछ रहा हूँ कामना।

विनोद—हाँ-हाँ, वही होगा।

(विलास एक छोटा-सा हार निकालकर लीला को पहनाता है। कामना क्षोभ से देखती है। विलास पर्दा खींचकर खड़ा हुआ मुसकिराता है। सब लोग आ जाते हैं। कामना सबका स्वागत करती है। युवक और युवतियों का झुंड बैठता है)

विलास—आज आप लोग मेरे अतिथि है, यदि कोई अपराध हो तो क्षमा कीजियेगा।

एक युवक—अतिथि क्या ?

विलास—यही कि मेरे घर पधारे है।

एक युवती—हम लोग तो इसे अपना ही घर समझते है।

विनोद—वास्तव मे तो घर विलासजी का है।

विलास—ऐसा कहना तो शिष्टाचार-मात्र है। अच्छे लोग तो ऐसा कहते ही है।

युवक—क्या इस घर के आप ही सब कुछ हैं ? हम लोग कुछ नहीं ?

कामना—आप लोग जब आ गये है, तब तक आप लोग भी है, परंतु विलासजी की आज्ञानुसार।

विलास—(हँसकर) हमारे देश मे इसको शिष्टाचार कहते है। यद्यपि आप लोगो का इस

समय हमारे घर पर पूर्ण अधिकार है, परंतु स्वत्व हमारा ही है; क्योंकि जब आप लोग यहाँ से चले जायँगे, तब तो हमीं न इसका उपभोग करेंगे।

लीला—कैसी सुंदर बात है, कैसा ऊँचा विचार है!

(सब आश्चर्य से एक दूसरे का मुँह देखते हैं)

विलास—आप लोग कुछ थके होंगे, इसलिए थोड़ी-थोड़ी पेया पी लीजिये, तब खेल होगा। कामना और लीला पिलावेंगी। देखिये, आप लोगों को आज एक नया खेल खिलाया जायगा। जो मैं कहूँ, वही करते चलिये।

युवक—ऐसा?

विलास—हाँ, आप लोग गाते हुए घूमते और नाचते भी तो हैं?

युवक और युवती—क्यों नहीं; परंतु उसका समय दूसरा होता है।

विलास—आज हम जैसा कहें, वैसा करना होगा।

कामना—अच्छी बात है। नया खेल देखा जायगा।

(कामना और लीला मदिरा ले आती हैं। विलास सबको पंक्ति से बैठाता और कामना को संकेत करता है।

दोनों नाचती हुई सबको मद्य पिलाती है। सब प्रसन्न होते है)

एक—(नशे मे) अब खेल होना चाहिये।

सब—(मद-विह्वल होकर) हॉ-हॉ, होना चाहिये।

विलास—अच्छा—(एक से पूछता है) क्यों, तुमको कौन स्त्री अच्छी लगती है? देखो, उसके मुख पर कैसा प्रकाश है।

(एक दूसरे की स्त्री को दिखाता है)

वह युवक—हॉ, इसमें तो कुछ विचित्र विशेषता है।

विलास—अच्छा, तो इनमे से सब लोग इसी प्रकार एक-एक स्त्री को चुन लो।

(नशे मे एक दूसरे की स्त्री को अच्छी समझते हुए उनका हाथ पकडते है। विलास सबको मंडलाकार खडा करता है)

कामना—अब क्या होगा?

विलास—इस खेल मे एक व्यक्ति बीच मे रहेगा, जो सबकी देख-रेख करेगा।

कामना—तुम्हीं रहो।

विलास—नही, मुझको तो आज अभी बताना पड़ेगा।

सब—तब हम लोग तो खेलेंगे, देखें कोई दूसरा—

विलास—अच्छा कामना, आज तुम्हीं देखो। और, तुम तो इन लोगों में मुख्य हो भी।

सब—ठीक कहा।

वलास—अच्छा, तो कामना? इस खेल की तुम रानी बनोगी। जब तुम कहोगी तभी यह खेल बंद होगा—समझीं?

सब—अच्छी बात है।

(विलास चंद्रहार और कंकण लाकर कामना को पहनाता है। सब आश्चर्य से देखते हैं)

विनोद और लीला—कामना रानी है।

विलास—सचमुच रानी है।

(कामना के संकेत करने पर नृत्य आरम्भ होता है, और विलास गाता है। सब उसका अनुकरण करते हैं)

पी ले प्रेम का प्याला!
भर ले जीवन-पात्र में यह अमृतमय हाला।
सृष्टि विकासित हो आँखों में, मन हो मतवाला।
मधुप पी रहे मधुर मधु, फूलो का सानंद;
तारा-मद्यप-मंडली चषक भरा यह चंद।
सजा आपानक निराला। पी ले०।

(सब उन्मत्त होकर नाचते-नाचते मद्यप की चेष्टा करते हैं। विवेक का प्रवेश। आश्चर्य-चकित होकर देखता है)

विलास—कौन ?

विवेक—यह नरक है या स्वर्ग ?

विलास—बुड्ढे इसे स्वर्ग कहते हैं। तुम कैसे जान गये ?

विवेक—तो इसी स्वर्ग में नरक की सृष्टि होगी। भागो-भागो।

विलास—पागल है।

सब—पागल है ! पागल है !

(उन्मत्त होकर विवेक क्षोभ से भागता है)

[यवनिका-पतन]

दूसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—जंगल

(विलास, कामना, विनोद और लीला)

लीला—बहुत दूर चले आये। अब हम लोगों को लौटना चाहिये।

विलास—क्यों ?

लीला—इधर जानवर बहुत मिलेंगे।

विलास—हाँ, इधर तो द्वीप के निवासी बहुत ही कम आते हैं।

विनोद—हम समझते हैं, अब इस द्वीप के मनुष्यों को और भूमि की आवश्यकता न होगी।

कामना—आवश्यकता तो होहीगी।

विलास—फिर इतना दुर्गम कांतार अनाक्रांत क्यों छोड़ दिया जाय ? सम्भव है, कालांतर में इधर ही बसना पड़े।

विनोद—तब इधर—

विलास—तुम्हारे पास तीर और धनुष क्यों है ?

विनोद—आने वाले भय से रक्षा के लिए।

विलास—परतु, यदि तुम्ही उनके लिए भय के कारण बन जाओ, तब ?

विनोद—कैसे ?

विलास—मूर्ख, दुर्दान्त पशु जब तुम्हारे ऊपर आक्रमण करते है, तब तुम अपने को बचाते हो। यदि तुम उन पर आक्रमण करने लगो, तो वे स्वयं भागेगे।

(चार युवक तीर और धनुष लिये आते है)

विलास—ये लोग भी आ गये।

कामना—हाँ, अब तो हम लोगो का एक अच्छा दल हुआ।

आगंतुक—कहिये, आज यहाँ कौन-सा नया खेल है ?

विलास—जो तुमको हानि पहुँचाने के लिए सदैव तत्पर है, उन्हे यदि तुम भयभीत कर सको, तो वे स्वयं कभी साहस न करेगे, और साथ ही एक खेल भी होगा।

आगंतुक—बात तो अच्छी है।

विलास—अच्छा, सब लोग भयानक चीत्कार करो, जिससे पशु निकलेंगे, और तब तुम लोग उन पर तीर चलाना।

सब—(आश्चर्य से) ऐसा!

विलास—हाँ।

(सब चिल्लाते हैं, ताली पीटते है, पशुओ का भीतर दौड़ना, तीर लगना और छटपटाना)

सब—बड़ा विचित्र खेल है।

विलास—खेल ही नहीं, यह व्यायाम भी है।

कामना—परंतु विलास, देखो यह हरी-हरी घास रक्त से लाल रँगी जाकर भयानक हो उठी है, यहाँ का पवन भाराक्रांत होकर दबे-पाँव चलने लगा है।

विलास—अभी तुमको अभ्यास नहीं है रानी! चलो विनोद, सबको लिवाकर तुम चलो।

(विलास और कामना को छोड़कर और सब जाते है)

कामना—विलास!

विलास—रानी!

कामना—तुमने व्याह नही किया।

विलास—किससे?

कामना—मुझी से, उपासना-गृह की प्रथा पूरी नहीं हुई।

विलास—परंतु और तो कुछ अंतर नहीं है। मेरा हृदय तो तुमसे अभिन्न ही है। मै तुम्हारा हो चुका हूँ।

कामना—परंतु—(सिर झुका लेती है)

विलास—कहो कामना। (ठुड्डी पकड़कर उठाता है)

कामना—मै अपनी नहीं रह गई हूँ प्रिय विलास! क्या कहूँ।

विलास—तुम मेरी हो। परंतु सुनो, यदि इस विदेशी युवक से ब्याह करके कहीं तुम सुखी न होओ, या कभी मुझी को यहाँ से चले जाना पड़े ?

कामना—(आश्चर्य और क्षोभ से) नहीं विलास, ऐसा न कहो।

विलास—परंतु अब तो तुम इस द्वीप की रानी हो। रानी को क्या ब्याह करके किसी बंधन मे पड़ना चाहिये।

कामना—तब तुमने मुझे रानी क्यों बनाया ?

विलास—रानी, तुमको इसलिए रानी बनाया कि तुम नियमों का प्रवर्तन करो। इस नियम-पूर्ण

संसार में अनियंत्रित जीवन व्यतीत करना क्या मूर्खता नहीं है ? नियम अवश्य हैं। ऐसे नीले नभ में अनंत उल्का-पिंड, उनका क्रम से उदय और अस्त होना, दिन के बाद नीरव निशीथ, पक्ष-पक्ष पर ज्योतिष्मती राका और कुहू, ऋतुओं का चक्र, और निस्संदेह शैशव के बाद उद्दाम यौवन, तब क्षोभ से भरी हुई जरा—ये सब क्या नियम नहीं हैं ?

कामना—यदि ये नियम हैं, तो मैं कह सकती हूँ कि अच्छे नियम नहीं हैं। ये नियम न होकर नियति हो जाते हैं, असफलता की ग्लानि उत्पन्न करते हैं।

विलास—कामना! उदार प्रकृति बल, सौंदर्य और स्फूर्ति के फुहारे छोड़ रही है। मनुष्यता यही है कि सहज-लब्ध विलासों का, अपने सुखों का संचय और उनका भोग करे। नियमों के लिए भले और बुरे, दोनों कर्त्तव्य होते हैं, क्योंकि एक नियम बड़ा कड़ा है, उसे कहते हैं "प्रतिफल"। कभी-कभी उसका रूप अत्यंत भयानक दिखाई पड़ता है, उससे जी घबराता है। परंतु मनुष्यों के कल्याण के लिए उसका उपयोग करना ही पड़ेगा, क्योंकि स्वयं प्रकृति वैसा करती है। देखो, यह सुंदर फूल झड़कर गिर पड़ा।

जिस मिट्टी से रस खींचकर फूला था, उसी मे अपना रंग-रूप मिला रहा है। परंतु विश्वम्भरा इस फूल के प्रत्येक केसर-बीज को अलग-अलग वृक्ष बना देगी, और उन्हे सैकड़ों फूल देगी।

कामना—इसमे तो बड़ी आशा है।

विलास—इसी का अनुकरण, निग्रह-अनुग्रह की क्षमता का केंद्र, प्रतिफल की अमोघ शक्ति मे यथाभाग-संतुष्ट रखने का साधन, राजशक्ति है। इस देश के कल्याण के लिए उसी तंत्र का तुम्हारे द्वारा प्रचार किया गया है, और तुम बनाई गई हो रानी। और रानी का पुरुष कौन होता है, जानती हो?

कामना—नहीं, बताओ।

विलास—राजा। परंतु मै तुम्हे ही इस द्वीप की एकच्छत्र अधिकारिणी देखा चाहता हूँ। उसमें हिस्सा नही बँटाना चाहता।

कामना—तब मेरा रानी होना व्यर्थ था।

विलास—परंतु तुम्हारी सब सेवा के लिए मै प्रस्तुत हूँ। कामना, तुम द्वीप-भर मे कुमारी ही बनी रहकर अपना प्रभाव विस्तृत करो। यही तुम्हारे रानी बने रहने के लिए पर्याप्त कारण हो जायगा।

कामना—यह क्या ? झूठ ।

विलास—मै जो कहता हूँ । चलो, वे लोग दूर निकल गये होंगे ।

(दोनो जाते हैं)

[पटाक्षेप]

दूसरा दृश्य

(पथ मे विवेक)

विवेक—डर लगता है । घृणा होती है । मुँह छिपा लेता हूँ । उनकी लाल आँखो मे क्रूरता, निर्दयता और हिंसा दौड़ने लगी है । लोभ ने उन्हे भेड़ियो से भी भयानक बना रक्खा है । वे जलती-बलती आग मे दौड़ने के लिए उत्सुक है । उनको चाहिये कठोर सोना और तरल मदिरा—देखो-देखो, वे आ रहे है ।

(अलग छिप जाता है)

(मद्यप की-सी अवस्था मे दो द्वीप-वासियो का प्रवेश)

१—आहा ! लीला की कैसी सुंदर गढ़न है ।

२—और जब वह हार पहन लेती है, तो जैसे संध्या के गुलाबी आकाश में सुनहरा चाँद खिल जाता है ।

१—देखो, तुम उसकी ओर न देखना।

२—क्यों, विनोद को छोड़कर तुम्हे भी जब यह अधिकार है, तब मै ही क्यों वंचित रहूँ ?

१—परंतु फिर तुम्हारी प्रेयसी को—

२—बस, बस, चुप रहो।

१—तब क्या किया जाय। वह मुझसे कंकणों के लिए कहती थी, इतना सोना मैं कहाँ से इकट्ठा करूँ ?

२—नदी की रेत से।

१—बड़ा परिश्रम है।

२—तब एक उपाय है—

१—क्या ?

२—शांतिदेव इधर आनेवाला है। उसके पास बहुत-सा सोना है। वह ले लिया जाय। तीर और धनुष तो है न ?

१—यही करना होगा।

(विवेक का प्रवेश)

विवेक—क्यो, क्या सोचते हो युवक ?

१—तुमसे क्यों कहूँ ?

२—तुम पागल हो।

विवेक—उन्मत्त ! व्यभिचारी !! पशु !!!

१—चुप बूढ़े।

विवेक—व्यभिचार ने तुम्हे स्त्री-सौंदर्य का चित्र दिखलाया है, और मदिरा उस पर रंग चढ़ाती है। क्यो, क्या यह सौंदर्य पहले कहीं छिपा था जो अब तुम लोग इतने सौंदर्य-लोलुप हो गये हो।

१—जा, जा, पागल बूढ़े, तू इस आनंद को क्या समझे?

विवेक—सौंदर्य, इस शोभन प्रकृति का सौंदर्य विस्मृत हो चला। हृदय का पवित्र सौंदर्य नष्ट हो गया। यह कुत्सित, यह अपदार्थ—

२—मूर्ख है, अंधा है। अरे मेरी आँखों से देख, तेरी आँखें खुल जायँगी, कुत्सित हृदय सौंदर्य-पूर्ण हो जायगा। बूढ़े, परंतु तुझे अब इन सब बातों से क्या काम? जा।

१—तुझे क्या यदि उसकी भौंह में एक बल है, आँखों के डोरे में खिचाव है, वक्षस्थल पर तनाव है, और अलकों में निराली उलझन है, चाल में लचीली लटक है? तू आँखें बंद रख।

२—उस पर उस चमकते हुए सोने के कंकण-हारों से सुशोभित अम्लान आभूषण-परिपाटी! मूर्ख—

१—पागल है।

विवेक—मै पागल हूँ! अच्छा है जो सज्ञान नही हूँ, इस बीभत्स कल्पना का आधार नही हूँ। हाय! हाय! हमारे फूलो के द्वीप के फूल अब मुरझाकर अपनी डाल से गिर पड़ते हैं। उन्हें कोई छूता नहीं। उनके सौरभ से द्वीप-वासियो के घर अब नहीं भर जाते। हाय मेरे प्यारे फूलो! (जाता है)

दोनो—जा, जा! (छिप जाते हैं)

(शांतिदेव का प्रवेश)

शांतिदेव—मै इसे कहाँ रक्खूँ, किधर से चलूँ? हैं, मुझे क्या हो गया! क्यो भयभीत हो रहा हूँ? इस द्वीप मे तो यह बात नहीं थी। परंतु, तब सोना भी तो नही था। अच्छा, इस पगडंडी से निकल चलूँ।

(बगल से निकलना चाहता है कि दोनों छिपे हुए तीर चलाते हैं। शांतिदेव गिर पड़ता है। दोनों आकर उसको दबा लेते है। सोना खोजते हैं)

(अकस्मात शिकारियों के साथ कामना का प्रवेश)

कामना—यह क्या, तुम लोग क्या कर रहे हो?

लीला—हत्या—

विलास—घोर अपराध !

कामना—(शिकारियों से) बाँध लो इनको, ये हत्यारे है।

(सब दोनों को पकड़ लेते है। शांतिदेव को उठाकर ले जाते हैं)

[पट-परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

स्थान—कुटीर

(विनोद और लीला)

लीला—मेरा स्वर्ण-पट्ट ?

विनोद—अभी तक तो नहीं मिला।

लीला—आज तक तो आशा-ही-आशा है।

विनोद—परंतु अब सफलता भी होगी।

लीला—कैसे ?

विनोद—अपराध होना आरम्भ हो गया है। अब तो एक दिन विचार भी होगा। देखो, कौन-कौन खेल होते है।

लीला—तुम उन दोनों को कहाँ रख आये ?

विनोद—पहले विचार हुआ कि उपासना-गृह

या संग्रहालय मे रक्खे जायँ। फिर यह निश्चित हुआ कि नहीं, मित्र-कुटुम्ब के लिए जो नया घर बन रहा है, उसी में रखना चाहिये। और, उन शिकारियों को वहाँ रक्षक नियत किया गया है।

लीला—इस विचार-योजना मे कुछ-न-कुछ तुम्हे मिलेगा।

विनोद—परंतु लीला, हम लोग कहाँ चले जा रहे हैं, कुछ समझ रही हो? समझ मे आने की ये बाते हैं?

लीला—अच्छी तरह। (मदिरा का पात्र भरती हुई) कही नीचे, कही बड़े अंधकार में।

विनोद—फिर मुझे क्यो प्रोत्साहित कर रही हो?

(लीला पात्र मुँह से लगा देती है, विनोद पीता है)

लीला—आज तुम्हे गाना सुनाऊँगी।

विनोद—(मद-विह्वल होकर) सुनाओ प्रिये!

(लीला गाती है)

छटा कैसी सलोनी निराली है,
देखो आई घटा मतवाली है।
आओ साजन मधु पियें, पहन फूल के हार;
फूल-सदृश यौवन खिला, है फूल की बहार।
भरी फूलों से बेले की डाली है॥ छटा०॥

शीतल धरती हो गई, शीतल पड़ीं फुहार ;
शीतल छाती से लगो, शीतल चली बयार ।
सभी ओर नई हरियाली है ॥ छटा० ॥

(सहसा कामना का कई युवकों के साथ प्रवेश)

कामना—फूल के हार कहाँ लीला ! तपा हुआ सोने का हार है । शीतलता कहाँ, ज्वाला धधक उठी है । यह आनंद करने का समय नही है ।

विनोद—क्या है रानी ?

कामना—विनोद, ये शिकारी उन अपराधियो के रक्षक है, इन्हे दिन-रात वहाँ रहना चाहिये । तब इनके जीवन-निर्वाह का प्रबंध—

विनोद—जैसी आज्ञा हो ।

(विलास का प्रवेश)

विलास—ये शिकारी नहीं, सैनिक हैं, शांति-रक्षक है ! सार्वजनिक संग्रहालय पर अधिकार करो । इनमे से कुछ उसकी रक्षा करेंगे, और बचे हुए कारागार की ।

विनोद—कारागार क्या ?

विलास—वही, जहाँ अपराधी रक्खे जाते है, जो शासन का मूल है, जो राज्य का अमोघ शस्त्र है।

लीला—(विनोद से) यह तो बड़ी अच्छी बात है।

कामना—विनोद, मैं तुमको सेनानी बनाती हूँ। देखो, प्रबंध करो। आतंक न फैलने पावे।

विलास—यह लो सेनापति का चिन्ह।

(एक छोटा-सा स्वर्ण-पट्ट पहनाता है। कामना तलवार हाथ मे देती है। सब भय और आश्चर्य से देखते हैं)

कामना—(शिकारियों से) देखो, आज से जो लोग इसकी आज्ञा नहीं मानेंगे, उन्हें दंड मिलेगा।

(सब घुटने टेकते हैं)

विलास—परंतु सेनापति, स्मरण रखना, तुम इस राजमुकुट के अन्यतम सेवक हो। राजसेवा में प्राण तक दे देना तुम्हारा धर्म होगा।

विनोद—(घुटने टेककर) मैं अनुगृहीत हुआ।

लीला—(धीरे से) परंतु यह तो बड़ा भयानक धर्म है।

कामना—हाँ विलासनी।

विलास—आज राजसभा होगी। उसी में कई पद प्रतिष्ठित किये जायँगे। वहीं सम्मान किया जाय।

कामना—अच्छी बात है।

(विनोद अपने सैनिकों के साथ परिक्रमण करता है)

[पट-परिवर्तन]

चौथा दृश्य

(पथ मे संतोष और विवेक)

संतोष—यह क्या हो रहा है ?

विवेक—इस देश के बच्चे दुर्बल, चिंताग्रस्त और झुके हुए दिखाई देते हैं। स्त्रिया के नेत्रों मे विह्वलता-सहित और भी कैसे-कैसे कृत्रिम भावों का समावेश हो गया है। व्यभिचार ने लज्जा का प्रचार कर दिया है।

संतोष—छिपकर बातें करना, कानों मे मंत्रणा करना, छुरो की चमक से आँखो मे त्रास उत्पन्न करना, वीरता नाम के किसी अद्भुत पदार्थ की ओर अंधे होकर दौड़ना युवको का कर्तव्य हो रहा है। वे शिकार और जुआ, मदिरा और विलासिता के दास होकर गर्व से छाती फुलाये घूमते हैं। कहते हैं, हम धीरे-धीरे सभ्य हो रहे हैं।

विवेक—सब बूढ़े मूर्ख और पुरानी लकीर पीटने वाले कहे जाते हैं।

संतोष—एक-एक पात्र मदिरा के लिए लालायित

होकर दासता का बोझ वहन करते हैं। हृदय में व्याकुलता, मस्तिष्क में पाप-कल्पना भरी है।

विवेक—सोने का ढेर छल और प्रवंचना से एकत्रित करके थोड़े-से ऐश्वर्यशाली मनुष्य द्वीप-भर को दास बनाये हुए हैं। और, आशा में, कल स्वयं भी ऐश्वर्यवान् होने की अभिलाषा मे बचे हुए सीधे सरल व्यक्ति भी पतित होते जा रहे हैं।

संतोप—हत्या और पापों की दौड़ हो रही है, और धर्म की धूम है।

विवेक—चलो भाई, चलें, अब उपासना-गृह मे शासन-सभा होगी। वही उन हत्यारों का विचार भी होनेवाला है। (देखना हुआ) उधर देखो, रानी उपासना-गृह मे जा रही है।

सतोष—भला यह रानी क्या वस्तु है ?

विवेक—मदिरा से ढुलकती हुई, वैभव के बोझ से दबी हुई, महत्त्वाकांक्षा की तृष्णा से प्यासी, अभिमान की मिट्टी की मूर्ति। परंतु है प्रभावशालिनी।

संतोष—भला हम लोग तो यह सब कुछ नहीं जानते थे। यह कहाँ से—

विवेक—वही विदेशी, इंद्रजाली युवक विलास।

उसकी तीक्ष्ण आँखो मे कौशल की लहर उठती है। मुसकिराहट में शीतल ज्वाला और बातो मे भ्रम की बढ़िया है।

संतोष—परंतु हम सब जानते हुए भी अजान हो रहे हैं।

विवेक—कोई उपाय नही। (जाता है)

(विलास का प्रवेश)

विलास—(स्वगत) यह बड़ा रमणीय देश है। भोले-भाले प्राणी थे, इनमें जिन भावो का प्रचार हुआ, वह उपयुक्त ही था। परन्तु सब करके क्या किया? अपने शाप-ग्रस्त और संघर्ष-पूर्ण देश की अत्याचार-ज्वाला से दग्ध होकर निकला। यहाँ शीतल छाया मिली, परंतु मैंने किया क्या?

संतोष—वही ज्वाला यहाँ भी फैला दी, यहाँ भी नवीन पापो की सृष्टि हुई। अब सब द्वीपवासी और उनके साथ तुम भी उसी मानसिक नीचता, पराधीनता, दासता, द्वंद्व और दुःखो के अलात-चक्र में दग्ध हो रहे हो। आनंद के लिए सब किया; पर वह कहाँ! जब मन मे आनंद नही, तब कही नहीं।

विलास—(देखकर) कौन? संतोष ! तुम क्या जानोगे? भावुकता और कल्पना ही मनुष्य को कला की ओर प्रेरित करती है। इसी मे उसके कल्याण का रहस्य है, पूर्णता है।

संतोष—विलास ! तुम्हारे असंख्य साधन है। तब भी कहाँ तक ? संसार की अनादि काल से की गई कल्पनाओ ने जंगल को जटिल बना दिया, भावुकता गले का हार हो गई, कितनी कविताओ के पुराने पत्र पतझड़ के पवन मे कहाँ-के-कहाँ उड़ गये ! तिस पर भी संसार मे असंख्य मूक कवितायें हुई। इसका कौन अनुमान कर सकता है? चन्द्र-सूर्य की किरणो की तूलिका से अनन्त आकाश के उज्वल पट पर बहुत-से नेत्रो ने दीप्तिमान रेखा-चित्र बनाये, परन्तु उनका चिन्ह भी नहीं है। जिनके कोमल कंठ पर गला दे देना साधारण बात थी, उन्होंने तीसरी सप्तक की कितनी मर्मभेदी तानें लगाईं; किन्तु वे सर्वग्रासी आकाश के खोखले मे विलीन होती गईं।

(संतोष जाता है, कामना का प्रवेश)

कामना—(विलास को देखकर स्वगत) जैसे खिले हुए ऊँचे कदम्ब पर वर्षा के यौवन का एक सुनील

मेघखंड छाया किये हो। कैसा मोहन रूप है (प्रगट) क्यो विलास ! यहाँ क्या कर रहे हो ?

विलास—विचार कर रहा हूँ ।

कामना—क्या ?

विलास—जिस इच्छा के अंकुर का रोपण करता हूँ, हमारी महत्त्वाकांक्षा उन्ही दो पत्तो को सुरक्षित रखने के लिए—सूर्य के ताप से बचाने के के लिए—अनन्त आकाश को मेघो से ढँक लेती है ।

कामना—तब तो बड़ी अच्छी बात है ?

विलास—परन्तु सन्देह है कि कही मधु-वर्षा के बदले करका-पात न हो ।

कामना—मीठी भावनाये करो । प्रिय विलास, मधुर कल्पनाये करो । सन्देह क्यो ?

विलास—सामने देखो—वह नदी का यौवन, जल-राशि का वैभव, परन्तु उसमे नीची-ऊँची लहरें हैं ।

कामना—नही देखती हो, सीपी अपने चमकीले दाँतो से हँस रही है । चलो, उपासना-गृह चलें ।

विलास—तुम चलो, मै अभी आता हूँ ।

(कामना जाती है)

विलास—(स्वगत)—कामना एक सुंदर रानी होने के योग्य प्रभावशालिनी स्त्री है । उसने व्याह का प्रस्ताव किया था । मै भी व्याह के पवित्र बंधन मे बँधकर राजा होकर सुखी होता, परंतु मेरी मानसिक अव्यवस्था कैसे छाया-चित्र दिखलाती है ! कोई अदृष्ट शक्ति संकेत कर रही है ।—नहीं, कामना एक गर्व-पूर्ण और सरल हृदय की स्त्री है । रंगीन तो है, पर निरीह इंद्रधनुष के समान उदय होकर विलीन होनेवाली है । तेज तो है, पर वेदी की धधकाने से जलने वाली ज्वाला है । मै उसको अपना हृदय-समर्पण नही कर सकता । मुझको चाहिये बिजली के समान वक्र रेखाओ का सृजन करने वाली, आँखो को चौंधिया देने वाली तीव्र और विचित्र वर्णमाला, जिस हृदय मे ज्वालामुखी धधकती हो, जिसे ईंधन का काम न हो, वह दुर्दमनीय तेज-ज्वाला । मैं उसी का अनुगत हूँगा । यह हृदय उसी का लोहा मानेगा । इस फूलों के द्वीप में मधुप के समान विहार करूँगा । मै इस देश के अनिर्दिष्ट पथ का धूमकेतु हूँ । चलूँगा, मेरी महत्त्वाकांक्षा ने अवकाश और समय दोनों की सृष्टि कर दी

है। उसमे पदार्थों के द्वारा नई सृष्टि करूँगा, फिर चाहे उस सृष्टि के साथ मै भी कुहेलिका-सागर में विलीन हो जाऊँ। चलूँ उपासना-गृह में।

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—उपासना गृह नवीन रूप में

(विलास सब लोगो को समझा रहा है, सब लोगों को खड़े होकर अभिवादन करना सिखला रहा है। बीच मे वेदी, सामने सिंहासन, और दोनो ओर चौकियाँ हैं। मंडलाकार लोग एकत्रित है। राजदंड हाथ मे लिये हुए कामना रानी का प्रवेश। पीछे सेनापति विनोद और सैनिक)

कामना—(सिंहासन के नीचे वेदी के सामने खड़ी होकर) हे परमेश्वर! तुम सबसे उत्तम हो, सबसे महान् हो, तुम्हारी जय हो।

सब—तुम्हारी जय हो।

विलास—आप आसन ग्रहण करें।

(कामना मंच पर बैठती है)

कामना—आप लोगो को सुशासन की आवश्यकता हो गई है; क्योंकि इस देश मे अपराधों की

संख्या बहुत बढ़ती चली जा रही है। यह मेरे लिए गौरव की बात है कि मुझे आप लोगो ने इसके लिए उपयुक्त समझा है। परंतु आप लोगो ने मेरे और अपने बीच का सम्बन्ध तो अच्छी तरह समझ लिया होगा ?

एक—नहीं।

विलास—(आश्चर्य से) नहीं समझा ! अरे, तुमको इतना भी नहीं ज्ञान हुआ कि यह तुम्हारी रानी हैं, और तुम इनके प्रजा ?

सब—हम प्रजा हैं।

विलास—देखो, ईश्वर असंख्य प्राणियों का, इस सारी सृष्टि का जिस प्रकार अधिपति है, उसी प्रकार तुम अपने कल्याण के लिए, अपनी सुव्यवस्था के लिए, न्याय और दंड के लिए इनको अपना अधिपति मानते हो। जिस प्रकार एक वन्य पशु दूसरे को सताकर उसे खा जाता है, और उसे दंड देने के लिए मृगया के रूप मे ईश्वर हम लोगो को आज्ञा देता है, उसी प्रकार हमारी इस जाति के एक दूसरे के अपराधियो को दंड देने के लिए रानी की आवश्यकता हुई। और, वह हुई ईश्वर की प्रतिनिधि।

अब हम सब लोग उसकी आज्ञा और नियमो का पालन करें, क्योकि उसने तुम्हारे कष्टो को मिटाने के लिए पवित्र कुमारी होने का कष्ट उठाया है। उसके संकल्प हमारे शुभ के लिए होगे।

विनोद—यथार्थ है। (तलवार सिर से लगाता है)

सब—हम अनुगत है। हमारी रक्षा करो।

कामना—तुम सब सुखी होगे। मेरे दो हाथ है, एक न्याय करेगा, दूसरा दंड देगा। दंड के लिए सेनापति नियुक्त है, परंतु न्याय मे सहायता के लिए एक मंत्री की—परामर्शदाता की—आवश्यकता है, जिसमे मै सत्य और न्याय के बल से शासन कर सकूँ। तुम लोगों में से कौन इस पद को ग्रहण करना चाहता है ?

(सब परस्पर मुँह देखते हैं)

कामना—मै तो विलास को इस पद के उपयुक्त समझती हूँ; क्योकि इन्हीं की कृपा और परामर्शों से हम लोगो ने बहुत उन्नति कर ली है।

लीला—मेरी भी यही सम्मति है।

सब लोग—अवश्य।

(कामना एक स्वर्ण-पट्ट विलास को पहनाती है। एक ओर विलास दूसरी ओर विनोद चौकियों पर बैठते है। धूनी जलती है)

विलास—अपराधियो को बुलाया जाय।

विनोद—(सैनिकों से) जाओ, उन्हे ले आओ।

(दो सैनिक एक एक को बाँधे हुए ले आते हैं)

कामना—क्यो, तुम लोगों ने शान्तिदेव की हत्या की ?

विलास—और तुम अपना अपराध स्वीकार करते हो कि नही ?

१ अपराधी—हत्या किसे कहते है, यह मै नही जानता। परंतु जो वस्तु मेरे पास नहीं थी, उसी को लेने के लिए हम लोगो ने शांतिदेव पर तीरो से वार किया।

२ अपराधी—और इसलिए कि उसके पास का सोना हम लोगों को मिल जाय।

कामना—देखो, तुम लोगों ने थोड़े-से सोने के लिए एक मनुष्य की हत्या कर डाली। यह घोर दुष्कर्म है।

विलास—और इसका दंड भी ऐसा होना

चाहिये कि देखकर लोग काँप उठें, फिर कोई ऐसा दुस्साहस न करे।

विवेक—जिसमे डरकर लोग तुम्हारा सोना न छुएँ।

कामना—कौन है यह ?

विनोद—वही पागल।

विवेक—इसने उसी वस्तु के लेने का प्रयत्न किया है, जिसकी आवश्यकता इस समय समग्र द्वीपवासियो को है। फिर—

विलास—परंतु इसका उद्योग अनुचित था।

विवेक—मैं पागल हूँ, क्या समझूँगा कि उचित उपाय क्या है। उपाय वही उचित होगा, जिसे आप नियम का रूप देंगे। परंतु मै पूछता हूँ, यहाँ इतने लोग खड़े है, इनमें कौन ऐसा है, जिसे सोना न चाहिये ?

(कामना विलास का मुँह देखती है)

विवेक—वाह ! कैसा सुंदर खेल है। खेलने के लिए बुलाते हो, और उसे फँसाकर नचाते हो। स्वयं ज्वाला फैला दी है; अब पतंग गिरने लगे हैं, तो उनको भगाना चाहते हो ?

विलास—न्याय में हस्तक्षेप करनेवाले इस वृद्ध को निकाल दो। पागलपन की भी एक सीमा होती है।

(वह निकाला जाता है)

कामना—अच्छा, इन्हे वंदीगृह में ले जाओ। अंतिम दंड इनको फिर दिया जायगा।

(बन्दियों को सैनिक ले जाते हैं। विलास और कामना बातें करते हैं)

कामना—सेनापति, उपस्थित सभी पुरुषों को आज का स्मरण-चिह्न लाकर दो।

(विनोद सबको स्वर्णमुद्रा देता है)

कामना—प्यारे द्वीप-वासियो, मेरी एकांत इच्छा है कि हमारे द्वीप-भर के लोग स्वर्ण के आभूषणों से लद जायँ। उनकी प्रसन्नता के लिए मैं प्रचुर साधन एकत्र करूँगी। परंतु उस काम में क्या आप लोग मेरा साथ देंगे?

सब—यदि सोना मिले, तो हम लोग सब कुछ करने के लिए प्रस्तुत हैं।

विलास—सब मिलेगा, आप लोग रानी की आज्ञा मानते रहिये।

एक—अवश्य मानेंगे। परंतु न्याय क्या ऐसा ही—

विलास—यह प्रश्न न करो।

विनोद—राजकीय आज्ञा की समालोचना करना पाप है।

विलास—दंड तो फिर दंड ही है। वह मीठी मदिरा नहीं है, जो गले में धीरे से उतार ली जाय।

सब—ठीक है। यथार्थ है।

विलास—देखो, अब से तुम लोग एक राष्ट्र मे परिणत हो रहे हो। राष्ट्र के शरीर की आत्मा राज-सत्ता है। उसका सदैव आज्ञापालन करना, सम्मान करना।

सब—हम लोग ऐसा ही करेंगे।

(विनोद घुटने टेकता है। सब वैसा ही करके जाते है)

[पट-परिवर्तन]

छठा दृश्य

स्थान—शांतिदेव का घर

लालसा—मेरा कोई नहीं है, साथी, जीवन का संगी और दुःख मे सहायक कोई नहीं है। अब यह

जीवन बोझ हो रहा है। क्या करूँ, अकेली बैठी हूँ, इतना सोना है, परंतु इसका भोग नही, इसका सुख नही। ओह ! (उठती और मदिरा का पात्र भरकर पीती है) परंतु नही, यह जीवन, जिसके लिए अनंत सुख-साधन हैं, रोकर बिता देने के लिए नहीं है। सब सुखी हैं, सब सुख की चेष्टा में है, फिर मैं ही क्यों कोने मे बैठकर रुदन करूँ ? देखो, कामना रानी है। वह भी तो इसी द्वीप की एक लड़की है। फिर कौन-सी बात ऐसी है, जो मेरे रानी होने मे बाधक है ? मै भी रानी हो सकती हूँ, यदि विलास को—हाँ, क्यो नही। (अपने आभूषणों को देखती है, वेश-भूषा सँवारती है, और गाती है)—

किसे नहीं चुभ जायँ, नैनों के तीर नुकीले ?
पलकों के प्याले रसीले, अलकों के फंदे गँसीले,
कौन देखूँ बच जाय, नैनों के तीर नुकीले।

(विलास का प्रवेश)

विलास—लालसा ! लालसा ! यह कैसा संगीत है ? यह अमृत-वर्षा ! मुझे नही विदित था कि इस मरुभूमि में मीठे पानी का सोता छिपा हुआ बह रहा है। इधर से चला जा रहा था, अकस्मात् यह मनोहर

ध्वनि सुनाई पड़ी। मैं आगे न जा सका, लौट आया।

लालसा—(बड़ी रुखाई से देखती हुई) आप! आप कौन है? हाँ, आप हैं! अच्छा, आ ही गये तो बैठ जाइये।

विलास—सुंदरी! इतना निष्ठुर विभ्रम! इतनी अंतरात्मा को मसलकर निचोड़ लेने वाली रुखाई! तभी तुम्हारे सामने हार मानने की इच्छा होती है।

लालसा—इच्छा होती है, हुआ करे, मै किसी की इच्छा को रोक सकती हूँ।

विलास—परंतु पूरी कर सकती हो।

लालसा—स्वयं रानी पर जिसका अधिकार है, उसकी कौन-सी अपूर्ण इच्छा होगी?

विलास—अब मुझी पर मेरा अधिकार नहीं रहा।

लालसा—देखती हूँ, बहुत-सी बाते भी आपसे सीखी जा सकती हैं।

विलास—इसका मुझे गर्व था, परंतु आज जाता रहा। मेरी जीवन-यात्रा मे इसी बात का सुख था कि मुझ पर किसी स्त्री ने विजय नहीं पाई, परंतु वह झूठा गर्व था। आज—

लालसा—तो क्या मै सचमुच सुंदरी हूँ ?

विलास—इसमे प्रमाण की आवश्यकता नही।

लालसा—परंतु मै इसको जाँच लूँगी, तब मानूँगी। दो-एक लोगो से पूछ लूँ। कही मुझे झूठा प्रलोभन तो नही दिया जा रहा है।

विलास—लालसा, मै मानता हूँ। (स्वगत) अब तो भाव और भाषा मे कृत्रिमता आ चली।

लालसा—फिर किसी दिन, मुझे अपना मूल्य लगा लेने दीजिये।

विलास—अच्छा, एक बार वही गान तो सुना दो।

लालसा—जब मंत्री महाशय की आज्ञा है, तब तो पूरी करनी ही पड़ेगी। अच्छा, एक पात्र तो ले लीजिये।

(गाती है—पिलाती है)—

किसे नहीं चुभ जायँ ··इत्यादि

विलास—कोई नहीं, कोई नहीं, इस अस्त्र से कौन बच सकता है ? अच्छा तो फिर किसी दिन।

(लालसा विचित्र भाव से सिर हिला देती है। विलास जाता है)

(लीला का प्रवेश)

लालसा—आओ सखी, बहुत दिनों में दिखाई पड़ी।

लीला—नित्य आने-आने करती हूँ, परंतु—

लालसा—परंतु विनोद से छुट्टी नही मिलती।

लीला—विनोद, वह तो एक निष्ठुर हत्यारा हो उठा है। उसको मृगया से अवकाश नही।

लालसा—तब भी तुम्हारी तो चैन से कटती है।

(संकेत करती है)

लीला—चुप, तू भी वही—

लालसा—आह, यह लो—

लीला—मन नही लगा, तो तेरे पास चली आई।

लालसा—तो मेरे पास मन लगने की कौन-सी वस्तु है? अकेली बैठी हुई दिन बिताती हूँ। गाती हूँ, रोती हूँ, और सोती हूँ।

लीला—तेरे आभूषणो की तो द्वीप-भर मे धूम है।

लालसा—परंतु दुर्भाग्य की तो न कहोगी।

लीला—तू तो बात भी लम्बी-चौड़ी करने लगी। अभी-अभी तो देखा, विलास चले जा रहे हैं।

लालसा—और तू कहां से आ रही है, वह भी बताना पड़ेगा।

लीला—चुप, देख, रानी आ रही हैं।

(रक्षकों के साथ रानी का प्रवेश । लालसा और लीला स्वागत करती हैं । संकेत करने पर सैनिक बाहर चले जाते हैं)

कामना—लालसा, तू लोगो से अब कम मिलती है, यह क्यो ?

लालसा—रानी, जी नहीं चाहता ।

कामना—इसी से तो मै स्वयं चली आई ।

लालसा—यह आपकी कृपा है कि प्रजा पर इतना अनुग्रह है ।

लीला—रानी, इसे बड़ा दुःख है ।

कामना—मेरे राज्य मे दुःख !

लालसा—हाँ रानी । मै अकेली हूँ। अपने स्वर्ण के लिए दिन-रात भयभीत रहती हूँ ।

कामना—लालसा, सबके पास जब आवश्यकतानुसार स्वर्ण हो जायगा, तभी यह अशांति दबेगी ।

लालसा—रानी, यदि क्षमा मिले, तो एक उपाय बताऊँ ।

रानी—हाँ-हाँ, कहो ।

लालसा—यह तो सबको विदित है कि शांतिदेव के पास बहुत सोना है । परंतु यह कोई नहीं जानता कि वह कहाँ से आया ।

लीला—हाँ-हाँ, बताओ, वह कहाँ से आया ?

लालसा—नदी-पार के देश से। आज तक इधर के लोग न-जाने कब से यही जानते थे कि उस पार न जाना, उधर अज्ञात प्रदेश है। परंतु शांतिदेव ने साहस करके उधर की यात्रा की थी, वह बहुत-से पशुओ और असभ्य मनुष्यों से बचते हुए वहाँ से यह सोना ले आये। जब नदी के इस पार आये, तो लोगो ने देख लिया, और इसी से उनकी हत्या भी हुई।

कामना—हाँ! (आश्चर्य प्रगट करती है)

लालसा—हाँ रानी, और उन हत्यारो को आज तक दंड भी नही मिला।

लीला—रानी, उसमे तो व्यर्थ विलम्ब हो रहा है। अवश्य कोई कठोर दंड उन्हे मिलना चाहिये। बेचारा शांतिदेव!

कामना—अच्छा, चलो, आज मृगया का महोत्सव है, वही सब प्रबंध हो जायगा।

(सब जाते है)

[पट-परिवर्तन]

सातवाँ दृश्य

स्थान—जंगल में एक कुटी

(वृक्ष के नीचे करुणा बैठी हुई)

संतोष—(प्रवेश करके) पतझड़ हो रहा है, पवन ने चौका देने वाली गति पकड़ ली है—इसे वसन्त का पवन कहते है—मालूम होता है कि कर्कश और शीर्ण पत्रो के बीच चलने मे उसकी असुविधा का ध्यान करके प्रकृति ने कोमल पल्लवो का सृजन करने का समारम्भ कर दिया है। विरल डालों मे कही-कहीं दो फूल और कहीं हरे अंकुर झूलने लगे हैं। गोधूली मे खेतो के बीच की पगडंडियाँ निर्जन होने पर भी मनोहर है—दूर-दूर रहट चलने का शब्द कम और कृषको का गान विशेष हो चला है। इसी वातावरण में हमारा देश बड़ा रमणीय था, परंतु अब क्या हो रहा है, कौन कह सकता है। सब सुख स्वर्ण के अधीन हो गये। हृदय का सुख खो गया। पतझड़ हो रहा है।

करुणा—मानव-जीवन मे कभी पतझड़ है, कभी वसंत। वह स्वयं कभी पत्तियाँ झाड़कर एकान्त का

सुख लेता है, कोलाहल से भागता है, और कभी-कभी फल-फूलो से लदकर नोचा-खसोटा जाता है।

संतोष—तुम कौन हो ?

करुणा—इसी अभागे देश की एक बालिका, जहाँ जीवन के साधारण सुख धन के आश्रय में पलते है, जिसका अभाव दरिद्रता है।

संतोष—दरिद्रता ! कैसी विकट समस्या ! देवी दरिद्रता सब पापो की जननी है, और लोभ उसकी सबसे बड़ी सन्तान है। उसका नाम न लो। देखो, अन्न के पके हुए खेतों में पवन के सर्राटे से लहर उठ रही है ! दरिद्रता कैसी ? कपड़े के लिए कपास बिखरे है। अभाव किसका है ? सुख तो मान लेने की वस्तु है। कोमल गद्दों पर चाहे न मिले, परन्तु निर्जन मूक शिलाखंड से उसकी शत्रुता नही।

करुणा—हाँ, वसन्त की भी शोभा है और पतझड़ मे भी एक श्री है। परंतु वह सुख के संगीत अब इस देश में कहा सुनाई पड़ते है, जिनसे वृक्षों मे—कुंजों में—हलचल हो जाती थी और पत्थरो में झनकार उटती थी। अब केवल एक क्षीण क्रन्दन उसके अट्टहास में बोलता है !

संतोष—देवी, तुम्हारे और कौन हैं ?

करुणा—यह प्रश्न इस द्वीप में नहीं था। सब एक कुटुम्ब थे, परन्तु अब तो यही कहना पड़ेगा कि मै शांतिदेव की बहन हूँ। जब से उसकी हत्या हुई, मै निस्सहाय हो गई। लालसा ने सब धन अपना लिया, और घर मे भी मुझे न रहने दिया। वह कहती है कि इस घर पर और सम्पत्ति पर केवल मेरा अधिकार है और रहेगा। मै इस स्थान पर कुटीर बनाकर रहती हूँ। अकेली मै अन्न नही उत्पन्न कर सकती, जंगली फलो पर निर्वाह करती हूँ। मै और कोई भी संसार के पदार्थ नही पा सकती; क्योकि सबके विनिमय के लिए अब सोना चाहिये। प्राकृतिक अमूल्य पदार्थो का मूल्य हो गया—वस्तु के बदले आवश्यक वस्तु न मिलने से प्राकृतिक साधन भी दुर्लभ है। सोने के लिए सब पागल है। अकारण कोई बैठने नही देता। जीवन के समस्त प्रश्नों के मूल मे अर्थ का प्राधान्य है। मैं दूर से उन धनियो के परिवार का दृश्य देखती हूँ। वे धन की आवश्यकता से इतने दरिद्र हो गये है कि उसके बिना उनके बच्चे उन्हे प्यारे नही लगते। धन का—अर्थ का—उपभोग

करने के लिए बच्चो की—संतानो की—आवश्यकता होती है। मै अपनी निर्धनता के आँसू पीकर संतोष करती हूँ और लौटकर इसी कुटीर में पड़ रहती हूँ।

संतोष—धन्य है तू बहन! आज से मैं तेरा भाई हूँ, मै तेरे लिए हल चलाऊँगा, तू दुःख न कर, मैं तेरा सब काम करूँगा। जिसका कोई नही है, मैं उसी का होकर देखूँगा कि इसमे क्या सुख है। हाँ, नाम तो बताया ही नहीं?

करुणा—करुणा!

संतोष—और मेरा नाम संतोष है बहन!

करुणा—अच्छा भाई, चलो, कुछ फल है, खा लो।

(दोनो कुटीर में जाते है)

आठवाँ दृश्य

(जंगल मे शिकारी लोग मांस भून रहे है, मद्य चल रहा है, नये शिकार के लिए खोज हो रही है। एक ओर से विलास और विनोद का प्रवेश। दूसरी ओर से कामना, लालसा और लीला का आना। विनोद तलवार निकाल-कर सिर से लगाता है। वैसा ही सब करते है)

सब—रानी की जय हो।

कामना—तुम लोगो का कल्याण हो।

विलास—रानी, तुम्हारी प्रजा तुम्हे आशीर्वाद देती है।

विनोद—उसके लिए वैभव और सुख का आयोजन होना चाहिये।

कामना—लालसा सोने की भूमि जानती है। वह तुम लोगो को बतावेगी। क्या उसे पाने के लिए तुम लोग प्रस्तुत हो?

सब—हम सब प्रस्तुत है।

लालसा—उसके लिए बड़ा कष्ट उठाना पड़ेगा।

सब—हम सब उठावेगे।

लालसा—अच्छा, तो मै बताती हूँ।

विनोद—और, इस प्रसन्नता मे मै पहले से आप लोगो को एक वन-भोज के लिए आमंत्रित करता हूँ।

लीला—परंतु लालसा की एक प्रार्थना है।

सब—अवश्य सुननी चाहिये।

लालसा—शांतिदेव की हत्या का प्रतिशोध।

(सब एक दूसरे का मुँह देखते है। लालसा विलास की ओर आशा से देखती है)

विलास—अवश्य, उन हत्यारे बंदियों को बुलाओ।

(चार सैनिक जाते हैं)

कामना—हाँ, तो तुम लोगों को उस भूमि पर अधिकार करना होगा। डरोगे तो नहीं ? वह भूमि नदी के उस पार है।

एक—जिधर हम लोग आज तक नहीं गये ?

विनोद—इसी कायरता के बल पर स्वर्ण का स्वप्न देखते हो ?

सब—नहीं, नहीं, सेनापति, आपने यह अनुचित कहा। हम सब वीर हैं।

विनोद—यदि वीर हो, तो चलो—वीरभोग्या तो वसुंधरा होती ही है। उस पर जो सबल पदाघात करता है, उसे वह हृदय खोलकर सोना देती है।

कामना—लालसा को धन्यवाद देना चाहिये।

(बन्दी हत्यारों के साथ सैनिकों का प्रवेश)

लालसा—यही है, यही है। मेरे शांतिदेव का हत्यारा !

कामना—तुम लोगों ने अपराध स्वीकार किया है ?

विवेक—(प्रवेश करके) मैंने तो आज बहुत दिनों पर यह नई सृष्टि देखी है। परंतु जो देखता हूँ, वह अद्भुत है। इन्होंने एक हत्या की थी सोने के लिए, परंतु तुम लोग उदर-पोषण के लिए सामूहिक रूप से आज

निरीह प्राणियों की हत्या का महोत्सव मना रहे हो। कल इसी प्रकार मनुष्यों की हत्या का आयोजन होगा।

हत्यारे—हमने कोई अपराध नहीं किया।

लीला—हत्यारों को इतना बोलने का अधिकार नहीं।

लालसा—इन्हें इन्हीं शिकारियों से मरवाना चाहिये।

विलास—जिसमें सब भयभीत हों, वैसा ही दंड उपयुक्त होगा।

कामना—ठीक है। इसी वृक्ष से इन्हें बाँध दिया जाय। और सब लोग तीर मारें।

(मदिरोन्मत्त सैनिक वैसा ही करते हैं। कामना मुँह फेर लेती है)

विवेक—रानी, देखो, अपना कठोर दंड देखो। और देखो अपराध से अपराध-परम्परा की सृष्टि।

विलास—इस पागल को तुम लोग यहाँ क्यों आने देते हो।

विवेक—मेरी भी इस खुली हुई छाती पर दो-तीन तीर! रक्त की धारा वक्षस्थल पर बहेगी, तो मैं भी समझूँगा कि तपा हुआ लाल सोने का हार मुझे उपहार में मिला है। रानी के सभ्य राज्य का

जय-घोष करूँगा। लोहू के प्यासे भेड़ियो, तुम जब बर्बर थे, तब क्या इससे बुरे थे? तुम पहले इससे भी क्या विशेष असभ्य थे? आज शासन-सभा का आयोजन करके सभ्य कहलानेवाले पशुओ, कल का तुम्हारा धुँधला अतीत इससे उज्ज्वल था।

कामना—यह बूढ़ा तो मुझे भी पागल कर देगा।

विनोद—हटाओ इसको।

(दो सैनिक उसे निकालते हैं)

विलास—तो लालसा कब बतावेगी उस भूमि को।

लालसा—मै साथ चलूँगी।

विलास—फिर उस देश पर आक्रमण की आयोजना होनी चाहिये।

कामना—सब सैनिक प्रस्तुत हो जायँ।

सब—जब आज्ञा हो।

विनोद—हमारा प्रीति का वन-भोज करके।

(सैनिक घूमते हैं)

कामना—अच्छी बात है।

(सब स्त्री-पुरुष एकत्र बैठते है। मद्य-मांस का भोज। उन्मत्त होकर सबका विकट नृत्य)

विनोद—मेरा एक प्रस्ताव है।

सब—कहिये ।

विनोद—यदि रानी की आज्ञा हो ।

कामना—हाँ, हाँ, कहो ।

विनोद—ऐसी उपकारिणी लालसा के कष्टों का ध्यान कर सब लोगों को चाहिये कि उनसे ब्याह कर लेने की प्रार्थना की जाय। कृतज्ञता प्रकाश करने का यह अच्छा अवसर है ।

कामना—परंतु—

विलास—नहीं रानी, उसका जीवन अकेला है, और अकेली पवित्रता केवल आपके लिए—

कामना—हाँ, अच्छी बात है, परंतु किसके साथ ?

एक स्त्री—नाम तो लालसा को ही बताना पड़ेगा।

लालसा—मैं तो नहीं जानती ।

(लज्जित होती है)

लीला—तो मैं चाहती हूँ कि हम लोगों के परम उपकारी विलासजी ही इस प्रार्थना को स्वीकार करें । यह जोड़ी बड़ी अच्छी होगी ।

सब—(एक स्वर से) बहुत ठीक है ।

(विनोद लालसा का और लीला विलास का हाथ पकड़कर मिला देते हैं । सब घेरकर नाचने लगते हैं ।

कामना त्रस्त हो उस यूथ से अलग होकर खड़ी हो जाती और आश्चर्य तथा करुणा से देखती है)

छिपाओगी कैसे—
आँखें कहेंगी।
बिथुरी अलक पकड़ लेती है
प्रेम की आँख चुराओगी कैसे—
आँखें कहेंगी।
राग-रक्त होते कपोल हैं
लेते ही नाम बताओगी कैसे—
आँखें कहेंगी।

[यवनिका-पतन]

तीसरा अंक

पहला दृश्य

क्रूर दुर्वृत्त, प्रमदा और दम्भ

(नवीन नगर का एक भाग, आचार्य दम्भ का घर)

दम्भ—निर्जन प्रान्तो मे गन्दे झोपड़े ! विना प्रमोद की रातें। दिन-भर कड़ी धूप मे परिश्रम करके मृतको की-सी अवस्था मे पड़ रहना। संस्कृति-विहीन, धर्म-विहीन जीवन ! तुम लोगो का मन तो अवश्य ऊब गया होगा।

प्रमदा—आचार्य—कही मदिरा की गोष्ठी के उपयुक्त स्थान नहीं ! संकेत-गृहों का भी अभाव ! उजड़े कुंज, खुले मैदान और जंगल, शीत, बर्षा तथा ग्रीष्म की सुविधा का कोई साधन नहीं। कोई भी विलास-शील प्राणी कैसे सुख पावे।

दम्भ—इसी लिए तो नवीन नगर-निर्माण की मेरी योजना सफल हो चली है। झुंड-के-झुंड लोग

इसमें आकर बसने लगे है। जैसे मधुमक्खियाँ अपने मधु की रक्षा के लिए मधुचक्र का सृजन करती हैं, वैसे ही धर्म और संस्कृति की इस नगर मे रक्षा होगी। नवीन विचारों का यह केन्द्र होगा। धर्म-प्रचार मे यहाँ से बड़ी सहायता मिलेगी।

दुर्वृत्त—बड़ा सुन्दर भविष्य है। सुन्दर महल, सार्वजनिक भोजनालय, संगीत-गृह और मदिरा-मन्दिर तो है ही; इनमे धर्म-भवनों की भव्यता बड़ा प्रभाव उत्पन्न कर रही है। देहाती अर्ध-सभ्य मनुष्यों को ये विशेष रूप से आकर्षित करते है। इससे उनके मानसिक विकास मे बड़ी सहायता मिलेगी।

क्रूर—यह तो ठीक है। पर यहाँ अधिक-से-अधिक सोने की आवश्यकता होगी। यहां व्यय की प्रचुरता नित्य अभाव का सृजन करेगी, और अन्य स्थलो की अच्छी वस्तु यहाँ एकत्र करने के लिए नये उद्योग-धन्धे निकालने होगे।

दम्भ—स्वर्ण के आश्रय में ही संस्कृति और धर्म बढ़ सकते हैं। उपाय जैसे भी हो, उनसे सोना इकट्ठा करो, फिर उनका सदुपयोग करके हम प्रायश्चित्त कर लेगें।

प्रमदा—स्त्रियाँ पुरुषों की दासता में जकड़ गई हैं, क्योंकि उन्हें ही स्वर्ण की अधिक आवश्यकता है। आभूषण उन्हीं के लिए है। मैंने स्त्रियों की स्वतंत्रता का मन्दिर खोल दिया है। यहाँ वे नवीन वेश-भूषा से अद्भुत लावण्य की सत्ता जमावेंगी। पुरुष स्वयं अब उनके अनुगत होंगे। मैं वैवाहिक जीवन को घृणा की दृष्टि से देखती हूँ। उन्हें धर्म-भवन की देवदासी बनाऊँगी।

दुर्वृत्त—और यहाँ कौन उसे अच्छा समझता है। पर मैंने कुछ दूसरा ही उपाय सोच लिया है।

क्रूर—वह क्या?

दुर्वृत्त—इतने मनुष्यों के एकत्र रहने में सुव्यवस्था की आवश्यकता है। नियमों का प्रचार होना चाहिये। इस लिए इस धर्म-भवन से समय-समय पर व्यवस्थायें निकलेंगी। वे अधिकार उत्पन्न करेंगी, और जब उनमें विवाद उत्पन्न होगा, तो हम लोगों का लाभ ही होगा। नियम न रहने से विशृंखला जो उत्पन्न होगी।

क्रूर—प्रमदा के प्रचार से विलास के परिणाम-स्वरूप रोग भी उत्पन्न होंगे। इधर अधिकारों को

लेकर झगड़े भी होंगे, मार-पीट होगी। तो फिर मैं औषधि और शस्त्र-चिकित्सा के द्वारा अधिक-से-अधिक सोना ले सकूँगा।

प्रमदा—परन्तु आचार्य की अनुमति क्या है?

दुर्वृत्त—आचार्य होंगे व्यवस्थापक। फिर तो अवस्था देखकर ही व्यवस्था बनानी पड़ेगी।

दम्भ—संस्कृति का आन्दोल हो रहा है। उसकी कुछ लहरें ऊँची हैं और कुछ नीची। यह भेद अब फूलों के द्वीप में छिपा नही रहा। मनुष्य-मात्र के बराबर होने के कोरे असत्य पर अब विश्वास उठ चला है। उसी भेद-भाव को लेकर समाज अपना नवीन सृजन कर रहा है। मै उसका संचालन करूँगा।

दुर्वृत्त—उसकी तो आवश्यकता हो गई है। परोपकार और सहानुभूति के लिए समाज की अत्यन्त आवश्यकता है।

दम्भ—योग्यता और संस्कृति के अनुसार श्रेणी-भेद हो रहा है। जो समुन्नत विचार के लोग हैं, उन्हें विशिष्ट स्थान देना होगा। धर्म-संस्कृति और समाज की क्रमोन्नति के लिए अधिकारी चुने जाँयगे। इससे समाज की उन्नति में बहुत-से केन्द्र बन जायँगे, जो

स्वतंत्र रूप से इसकी सहायता करेंगे । उस समय हमारी जाति समृद्ध और आनन्द-पूर्ण होगी । इस नगर मे रहकर हम लोग युद्ध और आक्रमणों से भी बचेगे ।

(विवेक प्रवेश करके)

विवेक—बाबा यह बड़े-बड़े महल तुम लोगो ने क्यों बना डाले ? क्या अनन्त काल तक जीवित रह कर दुख भोगने की तुम लोगो की बलवती इच्छा है?

दम्भ—गन्दा वस्त्र, असभ्यता से पूर्ण व्यवहार, यह कैसा पशु के समान मनुष्य है ! दूर रह ! मुझे छूना मत । इसे लज्जा नहीं !

विवेक—लज्जा जो अपराध करता है, उसे होती है । मै क्यो लज्जित होऊँ । मुझे किसी स्त्री की ओर प्यासी आँखो से नहीं देखना है, और न तो कपड़ों के आडम्बर मे अपनी नीचता छिपाना है ।

दुर्वृत्त—बर्बर ! तुझे बोलने का भी ढंग नहीं मालूम ! जा, चला जा, नहीं तो मै बता दूँगा कि नागरिको से कैसे व्यवहार किया जाता है ।

विवेक—कॉटे तो बिछ रहे थे, उनसे पैर बचाकर चलने मे त्राण हो जाता, परन्तु तुम लोगो ने नगर

बनाकर धोके की टट्टियो और जालो का भी प्रस्तार किया है। तुम्ही मुँह के बल गिरोगे। सम्हलो। लौट चलो उस नैसर्गिक जीवन की ओर, क्यो कृत्रिमता के पीछे दौड लगा रहे हो।

प्रमदा—जा बूढे, जा, कही से एक पात्र मदिरा माँगकर पी ले, और उस आनन्द मे किसी जगह पड़ रह। क्यो अपना सिर खपाता है।

विवेक—ओह! शान्ति और सेवा की मूर्त्ति, स्त्री के मुख से यह क्या सुन रहा हूँ—फूलो के मुँह से वीभत्सता की ज्वाला निकलने लगी है। शिशिर-प्रभात के हिम-कण चिनगारियाँ बरसाने लगे है। पिता! इन्हे अपनी गोद मे ले लो।

दम्भ—चुप बूढ़े! धर्म-शिक्षा देने का तुझे अधिकार नही—जा, अपने माँद मे घुस। अस्पृश्य! नीच!!

विवेक—मै भागूँगा, इस नगर-रूपी अपराधो के घोसले से अवश्य भागूँगा—परन्तु तुम पर दया आती है। (जाता है)

दम्भ—गया। सिर दुखने लगा। इस बकवादी को किसी ने रोका भी नहीं!

दुर्वृत्त—इन्हीं सब बातों के लिए नियम की—व्यवस्था की—आवश्यकता है।

प्रमदा—जाने दो। कुछ मदिरा का प्रसंग चले। देखो, वे नागरिक आ रहे हैं।

(मद्यपात्र लिये हुए नागरिक और स्त्रियाँ आती हैं)

(सबका पान और नृत्य)

दूसरा दृश्य

स्थान—स्कंधावार में पट-मंडप

(कामना रानी)

कामना—प्रकृति शांत है, हृदय चंचल है। आज चाँदनी का समुद्र बिछा हुआ है। मन मछली के समान तैर रहा है, उसकी प्यास नहीं बुझती। अनंत नक्षत्र-लोक से मधुर वंशी की झनकार निकल रही है; परंतु कोई गाने वाला नहीं है। किसी का स्वर नहीं मिलता। दासी! प्यास—

(सन्तोष का प्रवेश)

कामना—कौन? सन्तोष!

सन्तोष—हाँ रानी।

कामना—बहुत दिनो पर दिखाई पड़े ।

सन्तोष—हाँ रानी ।

काकना—किधर भूल पड़े ? अब क्या डर नहीं लगता ?

सन्तोष—लगता है रानी ।

कामना—(कुछ संकोच से) फिर भी किस साहस से यहाँ आये ।

सन्तोष—(मुस्कुराकर) देखने के लिए कि मेरी आवश्यकता अब भी है कि नहीं ।

कामना—परिहास न करो सन्तोष ।

सन्तोष—परिहास ! कभी नहीं । जब हृदय ने पराभव स्वीकार करके विजय-माला तुम्हे पहना दी और तुम्हारे कपोलो पर उत्साह की लहर खेल रही थी, उसी समय तुमने ठोकर लगा कर मेरी सुन्दर कल्पना को स्वप्न कर दिया । रमणी का रूप—कल्पना का प्रत्यक्ष—सम्भावना की साकारता और दूसरे अतीन्द्रिय रूप-लोक का आलोक, जिसके सामने मान-वीयमहत् अहम्-भाव लोटने लगता है । जिस पिच्छल भूमि पर स्खलन विवेक बनकर खड़ा होता है । जहाँ प्राण अपनी अतृप्त अभिलाषा का आनन्द-

निकेतन देखकर पूर्ण वेग से धमनियो में दौड़ने लगता है। जहाँ चिन्ता विस्मृत होकर विश्राम करने लगती है। वही रमणी का—तुम्हारा—रूप देखा था—और यह नही कह सकता कि मै झुक नहीं गया। परन्तु मैने देखा कि उस रूप मे पूर्ण चन्द्र के वैभव की चन्द्रिका-सी सबको नहला देने वाली उच्छृंखल वासना। वह अपार यौवन-राशि समुद्र के जल-स्तूप के समान समुन्नत—गर्व से ऊँची उसमें लहरियाँ चढ़ती थीं—गिरती थीं। वह जलराशि मेरे लिए रहस्य-पूर्ण कुतूहल की प्रेरक थी। मैने विचारा कि यह प्यास बुझाने का मधुर स्रोत नहीं है, जो मल्लिका की मीठी छाँह में बहता है।

कामना—क्या यह सम्भव नहीं कि तुमने भूल की हो, उसे उजेले मे न देखा हो! अँधेरे मे अपनी वस्तु न पहचान सके हो?

सन्तोष—वह तमिस्रा न थी, और न तो अन्धकार था, हमारे प्रेम की गोधूली थी, संन्ध्या थी। जब वृक्षो की पत्तियाँ सोने लगती है, जब प्रकृति विश्राम करने का संकेत करती है। पवन रुक कर सन्ध्या-सुन्दरी के सीमन्त मे सूर्य का सिन्दूर की रेखा

लगाना देखने लगता है। पक्षियो का घर लौटने का मंगल गान होने लगता है सृष्टि के उस रहस्यपूर्ण समय मे जब न तो तीव्र, चौंका देने वाला आलोक था—न तो नेत्रों को ढक लेने वाला तम था, तुम्हें देखने की—पहचानने की—चेष्टा की, और तुम्हे, कुहक के रूप मे देखा।

कामना—और देखते हुए भी आँखें बन्द थीं।

सन्तोष—मेरे पास कौन सम्बल था–कामना रानी!

कामना—ओह! मेरा भ्रम था!

सन्तोष—क्या तुम्हे दुःख है कामना!

कामना—मेरे दुःखो को पूछकर और दुःखी न बनाओ।

सन्तोष—नहीं कामना, क्षमा करो। तुम्हारे कपोलो के ऊपर और भौहो के नीचे एक श्याम मंडल है, नीरव रोदन हृदय मे है, गम्भीरता ललाट मे खेल रही है। और भी एक लज्जा नाम की नई वस्तु पलकों के परदे मे छिपी है, जो कुछ मर्म की बातें जानती है, जिन्हे हम लोग पहले नही जानते थे।

कामना—जाने दो सन्तोष! तुम्हे अब इससे क्या। तुम तो सुखी हो।

सन्तोष—सुखी। मै सबसे सुखी हूँ—मेरी एक ही अवस्था है। दुःखो की बात उनसे पूछो, तुम्हारी राज्य-कल्पना से जिनकी मानसिक शुभेच्छा एक बार ही दब गई है। जिन पर कल्याण की मधु-वर्षा नही होती, उन अपनी प्रजाओ से पूछो, और पूछो अपने मन से।

कामना—जाओ सन्तोष, मुझे और दुखी न बनाओ (सिर झुका लेती है)

सन्तोष—अच्छा रानी, मै जाता हूँ। (जाता है)

कामना—(कुछ देर बाद सिर उठाकर) क्या चला गया—

(दासी पात्र लिये आती है, और सखियाँ जाती हैं)

१—रानी, मन कैसा है ?

२—मैं बलिहारी, यह उदासी क्यो है ?

कामना—यह पूछकर तुम क्या करोगी ?

१—फिर किससे कहोगी ?

२—पगली ! देखती नहीं ? स्त्री होकर भी नही जानती, नहीं समझती।

१—रानी, देश में अन्य बहुत-से युवक हैं।

कामना—तो फिर ?

२—ब्याह कर लो रानी !

कामना—चुप मूर्ख ! मै पवित्र कुमारी हूँ। मैं सोने से लदी हुई परिचारिकाओं से घिरी हुई अपने अभिमान-साधना की कठिन तपस्या करूँगी। अपने हाथो से जो विडम्बना मोल ली है, उसका प्रतिफल कौन भोगेगा ? उसका आनंद, उसका ऐश्वर्य और उसकी प्रशंसा, क्या इतना जीवन के लिए पर्याप्त नहीं है ?

१—परंतु—

२—जीवन का सुख, स्त्री होने का उच्चतम अधिकार कहाँ मिला ? रानी, तुम किसी पुरुष को अपना नहीं बना सकी।

कामना—देखती हूँ; तू बहुत बढ़ी चली जा रही है। क्या तुझे—

१—क्षमा हो, अपराध क्षमा हो।

२—रानी, मुझे चाहे तीरो से छिदवा दो, परंतु मैं एक बात बिना कहे न मानूँगी। जब इस विदेशी विलास को तुम्हारे साथ देखती हूँ, तब मैं क्रोध से काँप उठती हूँ। कुछ वश नहीं चलता, इससे रोने लगती हूँ। बस, और क्या कहूँ।

कामना—प्यारी, तू उस बात को न कह, उसे वधिरता के घने परदे मे छिपी रहने दे। मेरे जीवन के निकटतम रहस्य को अमावास्या से भी काली चादर मे छिपा रख। मै रोना चाहती हूँ; पर रो नही सकती। हाॅ—

२—अच्छा, मै कुछ गाऊँ, जिसमे मन बहले।

कामना—सखी—

(गान)

जाओ, सखी, तुम जी न जलाओ,
हमे न सताओ जी।
१—तुम व्यर्थ रहीं बकती,
कामना—तुम जान नही सकती,
मन की कथा है कहने की नही
२—मत बात बनाओ जी।
१—समझोगी नही सजनी,
२—अब प्रेममयी रजनी,
भर नैन सुधा-छवि चाख गई
अब क्या समझाओ जी।

(विलास का प्रवेश)।

विलास—रानी !

कामना—(सम्हलकर) क्यों विलास? यह नगर कैसा बसाया जा रहा है?

विलास—आज भयानक युद्ध होगा। कल बताऊँगा।

कामना—अच्छा खेल होगा, सभ्यता का तांडव नृत्य होगा। वीरता की तृष्णा बुझेगी, और हाथ लगेगा सोना!

विलास—व्यंग्य न करो रानी! विनोद आज मदिरा मे उन्मत्त है; कोई सेनापति नहीं है।

कामना—तो मैं चलूँ?

विलास—मैं तो पूछ रहा हूँ।

कामना—अच्छी बात है, आज तुम्हीं सेनापति का काम करो। लीला और लालसा भी रणक्षेत्र में साथ जायँगी कि नहीं? (नेपथ्य मे कोलाहल)

विलास—(बिगडकर) स्त्रियों के पास और होता क्या है।

कामना—कुछ नही, अपना सब कुछ देकर ठोकरें खाना! उपहास का लक्ष्य बन जाना!

विलास—इस समय युद्ध के सिवा और कुछ नहीं। फिर किसी दिन उपालम्भ सुन लूँगा।

(वेग से जाता है)

(लीला और लालसा के साथ मद्यप विनोद का प्रवेश)

विनोद—रानी, सब पागल हैं।

कामना—एक तुमको छोड़कर विनोद।

विनोद—मैं तो कहता हूँ; दस घड़े रक्त के न बहाकर यदि एक पात्र मदिरा पी लो, सब कुछ हो गया।

लीला—रानी, देखो, यह सोने का जाल नया बनकर आया है।

कामना—बहुत अच्छा है।

लालसा—और यह सोने के तारों से बिनी हुई नई साड़ी तो देखी ही नहीं। (दिखाती है)

कामना—वाह ! कितनी सुंदर शिल्पकला है।

विनोद—इस देश से खूब सोना घर भेजा गया है। वहाँ नये-नये सौंदर्य-साधन बनाये जा रहे हैं। रानी, लाल रक्त गिराने से पीला सोना मिलने लगा। कैसा खेल है ?

कामना—बहुत अच्छा।

लालसा—आज विलास सेनापति होकर आक्रमण करने गये हैं, तो विनोद, तुम्हीं मेरे पटमंडप मे चलो। मैं अकेली कैसे रहूँगी ?

विनोद—हाँ, यह तो अत्यंत खेद की बात है। परंतु कोई चिंता नहीं। चलो।

(दोनो जाते हैं)

लीला—रानी!

कामना—लीला!

लीला—यह सब क्या हो रहा है?

कामना—ऐश्वर्य और सभ्यता के परिणाम।

लीला—तुम रानी हो, इसको रोको।

कामना—मेरा स्वर्ण-पट्ट देखकर प्रथम तुम्हीं को इसकी चाह हुई, आकांक्षा हुई। अब क्या, देश में धनवान् और निर्द्धन, शासकों का तीव्र तेज, दीनों की विनम्र दयनीय दासता, सैनिक-बल का प्रचंड प्रताप, किसानों की भारवाही पशु की-सी पराधीनता, ऊँच और नीच, अभिजात और बर्बर, सैनिक और किसान, शिल्पी और व्यापारी, और इन सभी के ऊपर सभ्य व्यवस्थापक—सब कुछ तो है। नये-नये संदेश, नये-नये उद्देश, नई-नई संस्थाओं का प्रचार, सब कुछ सोना और मदिरा के बल से हो रहा है। हम जागते में स्वप्न देख रहे है।

लीला—ओह! (जाती है)

(दो सैनिक एक स्त्री को बाँधकर लाते हैं)

कामना—यह कौन है ?

सैनिक—युद्ध मे यह बंदी बनाई गई है ।

कामना—इसका अपराध ?

सैनिक—सेनापति के आने पर वह स्वयं निवेदन करेंगे। हम लोगो को आज्ञा हो, तो जायँ, युद्ध समाप्त होने के समीप है ।

कामना—जाओ ।

(दोनों जाते हैं)

स्त्री—तुम रानी हो ?

कामना—हाँ ।

स्त्री—रानी बनने की साध क्यो हुई ? क्या आँखें इतनी रक्त-धारा देखने की प्यासी थी ? क्या इतनी भीषणता के साथ तुम्हारा ही जयघोष किया जाता है ?

कामना—मेरे दुर्भाग्य से ।

स्त्री—और तुम चुपचाप देखती हो ।

कामना—तुम बंदी हो, चुप रहो ।

(रक्ताक्त कलेवर विजयी विलास का प्रवेश)

विलास—जय, रानी की जय !

कामना—क्या शत्रु भाग गये ?

विलास—हाँ रानी ।

कामना—अच्छा विलास, बैठो, विश्राम करो ।

विलास—(देखकर) आहा ! यह अभी यहीं है । इसको मेरे पटमंडप मे न ले जाकर यहाँ किसने छोड़ दिया ?

कामना—वह सैनिक इसे यही पकड़ लाया । परंतु कहो तो विलास, इसे क्यों पकड़ा ?

विलास—तुमको रानी, राज्य करने से काम, इन पचड़ो में क्यो पड़ती हो ? युद्ध मे स्त्री और स्वर्ण, यही तो लूट के उपहार मिलते है । विजयी के लिए यही प्रसन्नता है । इसे मेरे यहाँ भेज दो ।

कामना—विलास, तुमको क्या हो गया है ? मै रानी हूँ, तुम्हारी शय्या सजाने की दासी नहीं । अभी चले जाओ ।

स्त्री—दोहाई रानी की ! तुम्हारे राज्य के बदले भी मुझे ऐसा पुरुष नहीं चाहिये । मुझे बचाओ, यह नरपिशाच ! ओह— (मुँह ढकती है)

विलास—अच्छा, जाता हूँ । (सरोष प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

(पथ मे लालसा)

लालसा—दारुण ज्वाला, अतृप्ति का भयानक अभिशाप! कौन है? मेरे जीवन का संगी कौन है? लालसा हूँ मै, जन्म-भर जिसको संतोष नही हुआ! नगर से होकर आ रही हूँ। प्रमदा के स्वतंत्रता-भवन के आनन्द-विहार से भी जी नहीं भरा, कोई किसी को रोक नही सकता और न तो विहार की धारा में लौटने की बाधा है। उच्छृंखल उन्मत्त विलास—मदिरा की विस्मृति। विहार की श्रान्ति। फिर भी लालसा! (देखकर) अरे, मैं घूमती-घूमती किधर निकल आई? कही बहुत दूर। यदि कोई शत्रु आ गया, तो (ठहरकर सोचती है) क्या चिन्ता।

(एक शत्रु सैनिक का प्रवेश)

सैनिक—तुम कौन हो?

लालसा—मैं, मैं?

सैनिक—हाँ, तुम।

लालसा—सेनापति विलास की स्त्री।

सैनिक—जानती हो, कल तुम्हारे सेनापति ने

मेरी स्त्री को पकड़ लिया है ? आज तुमको यदि मैं पकड़ ले जाऊँ ?

लालसा—(मुसकिराकर) कहाँ ले जाओगे ?

सैनिक—यह क्या ?

लालसा—कहाँ चलूँ, पूछती तो हूँ । तुम्हारे सदृश पुरुष के साथ चलने में किस सुंदरी को शंका होगी ?

सैनिक—इतना अधःपतन ! हम लोगों ने तो समझा था कि तुम्हारे देश के लोग केवल स्वर्ण-लोलुप शृगाल ही हैं; परंतु नहीं, तुम लोग तो पशुओं से भी गये-बीते हो । जाओ—

लालसा—तो क्या तुम चले जाओगे ? मेरी ओर देखो ।

सैनिक—छिः ! देखने के लिए बहुत-सी उत्तम वस्तुयें हैं । सरल शिशुओं की निर्मल हँसी, शरद का प्रसन्न आकाश-मंडल, वसंत का विकसित कानन, वर्षा की तरंगिणी-धारा, माता और संतानों का विनोद देखने से जिसे छुट्टी हो, वह तुम्हारी ओर देखे ।

लालसा—तुम्हारे वाक्य मेरी कर्णेन्द्रियों को

माँग रहे है। मै कैसे छोड़ दूँ, कैसे न दूँ! ठहरो, मुझे इस सम्पूर्ण मनुष्यत्व को आँखो से देख लेने दो।

सैनिक—जाओ रमणी, लौट जाओ! तुम्हारा सेना-निवेश दूर है।

लालसा—फिर तुम्हे इतने रूप की क्या आवश्यकता थी, जब हृदय ही न था?

(तिरस्कार से देखता हुआ सैनिक जाता है)

लालसा—(स्वगत) चला जायगा। यों नहीं (प्रकट) अच्छा तो सुनो। क्या तुम अपनी स्त्री को भी नहीं छुड़ाना चाहते?

सैनिक—(लौटकर) अवश्य छुड़ाना चाहता हूँ—प्राण भी देकर।

लालसा—अच्छा चलो, मैं तुम्हारी सहायता करूँगी। तुम्हारे शिष्ट आचरण का प्रतिदान करूँगी। चलोगे, डरते तो नहीं?

सैनिक—डर क्या है? चलूँगा।

(दोनों जाते है। विलास का प्रवेश)

विलास—यह उन्मत्त विलास-लालसा! वक्षःस्थल मे प्रबल पीड़ा! ओह! अविश्वासिनी स्त्री, तूने मेरे पद की मर्यादा, वीरता का गौरव और ज्ञान की

गरिमा सब डुबा दी ! जी चाहता है, इस अतृप्त हृदय मे छुरा डालकर नचा दूँ । (ठहरकर) परंतु विलास ! विलास ! तुझे क्या हो गया है ? तुझे इससे क्या ? राज्य यदि करना है, तो इन छोटी-छोटी बातों पर क्यो ध्यान देता है ? अपनी प्रतिभा से शासन कर !

(विवेक आता है)

विवेक—आहा ! मंत्री और सेनापति महाशय, नमस्कार । परंतु नही, जब मंत्री और सेनापति दोनो पद-पदार्थ एक आधार मे है, तब राजा क्या कोई भिन्न वस्तु है । दोनो की सम्मिलित शक्ति ही तो राजशक्ति है । अतएव हे राज-मंत्री-सेनापति ! हे दिक्-काल-पदार्थ ! हे जन्म-जीवन और मृत्यु ! आपको नमस्कार !

विलास—(विवेक का हाथ पकड़कर) बूढ़े, सच बता, तू पागल है या कोई बना हुआ चतुर व्यक्ति ? यदि तुझे मार डालूँ !

विवेक—(हँसकर) अरे भ्रम है । सब मंत्री मूर्ख होते है, कौन कहता है, चतुर होते हैं । जिसे इतनी पहचान नहीं कि मै पागल हूँ या स्वस्थ, वह राजा का कार्य क्या करेगा ?

विलास—अच्छा, तुम यहाँ क्या करने आये हो ?

विवेक—लड़ाई कभी नही देखी थी, बड़ी लालसा थी, उसी से—

विलास—तो तू ही वह व्यक्ति है, जिसने बहुत-से घायलो को पास की अमराई में इकट्ठा कर रक्खा है और उनकी सेवा करता है ?

विवेक—यह भी यदि अपराध हो, तो दंड दीजिये, नही तो समझ लीजिये कि पागलपन है।

विलास—फिर विचार करूँगा, इस समय जाता हूँ।

विवेक—विचार करते जाइये, कलेजा फाड़ते जाइये, छुरे चलाते रहिये और विचार करते रहिये। विचार से न चूकिये, नही तो—

विलास—चुप !

विवेक—आहा, विचार और विवेक को कभी न छोड़िये, चाहे किसी के प्राण ले लीजिये, परंतु विचार करके।

(विलास सरोप चला जाता है, विवेक दूसरी ओर जाता है)

चौथा दृश्य

स्थान—खेत में करुणा की कुटी

(संतोष अन्न की बालें एकत्रित कर रहा है। दुर्वृत्त आता है)

दुर्वृत्त—क्यों जी, इस खेत का तुम कितना कर देते हो ?

संतोष—कर।

दुर्वृत्त—हाँ। रक्षा का कर !

संतोष—क्या इस मुक्त प्राकृतिक दान में भी किसी आपत्ति का डर है ? और क्या उन आपत्तियों से तुम किसी प्रकार इनकी रक्षा भी कर सकते हो।

दुर्वृत्त—मुझे विवाद करने का समय नहीं है।

संतोष—तब तो मुझे भी छुट्टी दीजिये, बहुत काम करना है।

दुर्वृत्त—(क्रोध से देखता हुआ) अच्छा जाता हूँ।

(जाता है। करुणा आती है)

करुणा—भाई, तुम्हें काम करते बहुत विलम्ब हुआ। थक गये होगे—चलो, कुछ खा लो।

संतोष—बहन ! इस गाँठ को भीतर धर दूँ, तो चलूँ। (परिश्रम से थका हुआ संतोष बोझ उठाता है। गिर पडता है। उसके पैर मे चोट आती है। करुणा उसे उठाकर भीतर ले जाती है)

(एक ओर से वनलक्ष्मी दूसरी ओर से महत्त्वाकांक्षा का प्रवेश)

वनलक्ष्मी—देखो, तुम्हारी कर लेने की प्रवृत्ति ने नाजो का सत्व हलका कर दिया, कृषक थकने लगे है। खेतो को सींचने की आवश्यकता हो गई है। उर्वरा पृथ्वी को भी कृत्रिम बनाया जाने लगा है।

महत्त्वाकांक्षा—विलास के लिए साधन कहाँ से आवेंगे ? यह जंगलीपन ! अकर्मण्य होकर प्रकृति की पराधीनता क्यो भोग करें। शक्ति है, फिर अभाव क्यों रह जाय ?

वनलक्ष्मी—विलास की महत्त्वाकांक्षा ! तुम्हारा कहीं अन्त भी है। कब तक और कहाँ तक तुम मानव-जाति को झगड़ते देखना चाहती हो ?

महत्त्वाकांक्षा—प्रकृति अपनी सीमा क्यों नहीं बनाती। फूल—उनकी कोमलता और उनका सौरभ एक ही प्रकार का रहने से भी तो काम चल जाता।

फिर इतनी शिल्पकला, पंखड़ियों की विभिन्नता, रंग की सजावट क्यों ? हम अनन्त साधनों से अपने सुख को अधिकाधिक सम्पूर्ण क्यों न बनावें।

वनलक्ष्मी—दौड़ाओ काल्पनिक महत्त्व के लिए। अतृप्ति के कशाघात से उत्तेजित करो जिसमें कुछ लोग प्रशंसा करें। परन्तु प्रकृति के कोश से अनावश्यक व्यय करने का किसको अधिकार है ? यह ऋण है। इसे कभी भी कोई चुका सकेगा ? प्राकृतिक पदार्थों का अपव्यय करके भावी जनता को दरिद्र ही नहीं बनाया जा रहा है, प्रत्युत उनकी वृत्ति का उद्गम ही बन्द कर देने का उपक्रम है। वे अपने पूर्वजों के इस ऋण को चुकाने के लिए भूखों मरेंगे।

महत्त्वाकांक्षा—मरे, कौन निर्बलों का जीवन अच्छा समझता है ! देखो यही न, संतोष और करुणा। इनकी क्या अवस्था है।

वनलक्ष्मी—इन पर तुम्हें दया नहीं, ये सच्चे हैं, सृष्टि की अमूल्य सम्पत्ति हैं। इनकी रक्षा करो।

महत्त्वाकांक्षा—(हँसती है) तुम सरल हो।

वनलक्ष्मी—तुम कुटिलता में ही सौन्दर्य देखती हो।

महत्त्वाकांक्षा—तरल जल की लहरें भी सरल

नहीं। बाँकपन ही तो सौन्दर्य है। मै उसी को मानती हूँ। करुणा और संतोप सृष्टि की दुर्बलतायें है। मेरे पास उनके लिए सहानुभूति नहीं (जाती

वनलक्ष्मी—मेरा मृदुल कुटुम्ब! मेरा कोमल श्रृंगार! इस क्रूर महत्त्वाकांक्षा से झुलस रहा है! मै उन्हे आलिंगन करूँगी। (खेत मे बैठकर एक तृण-कुसुम को देखती हुई) तू कुछ कह रहा है। तेरा कुछ संदेश है। तेरी लघुता एक महान रहस्य है। मै तेरे साथ स्वर मिलाकर गाऊँगी। (गाती है)

पृथ्वी की श्यामल पुलको मे सात्विक स्वेद बिन्दु रंगीन।
नृत्य कर रहा हिलता हूँ मै मलयानिल से हो स्वाधीन॥
आँधी की बहिया बह जाती चिढ़ कर चल जाती चपला।
मै यो ही हूँ, ये कोई भी मेरी हँसी न सकते छीन॥
तितली अपना गिरा और भूला-सा पंख समझती है।
मुझे छोड देती, मेरा मकरन्द मुझी मे रहता लीन॥
मधु-सौरभ वाले फल-फूलों को लुट जाने का डर हो।
मै झूला झूलती रही हूँ—बनी हुई अम्लान नवीन॥
व्यथित विश्व का राग-रक्त क्षत हूँ, मुझको पहचानो तो।
सुधा-भरी चाँदनी सुनाती मुझको अपनी जीवन-बीन॥

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—फूलों के द्वीप में एक नागरिक का घर

पिता—बेटा, इतनी देर हुई, अभी तक सोते रहोगे, क्या आज खेतों मे हल न जायगा ?

लड़का—(आँख मलता हुआ) पहले एक प्याली मदिरा, फिर दूसरी बात, ओह, देह-भर मे बड़ी पीड़ा है ।

पिता—लड़के ! तुझे लज्जा नहीं आती ! मुझसे मदिरा माँगता है ?

लड़का—तो मा से कह दो, दे जाय ।

(माता का प्रवेश)

माता —क्यो, आज भी सबेरा हो गया, अभी सुनार के यहाँ नही गये, हल पकड़े खड़े हो ? इससे तो अच्छा होता कि बैलों के बदले तुम्हीं इसमे जुतते । आज के उत्सव मे चार स्त्रियों के सामने क्या पहनकर जाऊँगी ?

पिता—तो अच्छी बात है, सोने का गहना बैठ-कर खाना, और चबाना मेरी सूखी हड्डियाँ ! लड़के

को चौपट कर डाला। वह मुझसे मदिरा माँगता है, और तुम माँगती हो आभूषण।

लड़का—(लेटा हुआ) तुम दोनो कैसे मूर्ख बकवादी हो। एक प्याली देने मे इतनी देर, इतना झंझट!

माता—तुझ-सा निखट्टू पति मेरे ही भाग्य मे बदा था! मै यदि—

पिता—हाँ, हाँ, कहो, 'यदि' क्या? यही न कि दूसरे की स्त्री होती, तो गहनो से लद जाती; परंतु उसके साथ पापो से भी—

लड़का—देखो, मुझे एक प्याला दे दो, और एक-एक तुम लोग—बस, झगड़ा मिट जायगा। जो बैल होंगे, आप ही कुछ देर में खेत पर पहुँच जायँगे।

पिता—कुलांगार! यह धृष्टता मुझसे सही न जायगी।

लड़का—तो लो, मैं जाता हूँ। युद्ध में सैनिक बनकर आनंद करूँगा। तुम दोनों के नित्य के झगड़े से तो छुट्टी मिल जायगी। (उठता है)

माता—यह बाप है कि हत्यारा? एक प्याला मदिरा नही दे देता। लड़के को मरने के लिए युद्ध में

भेजना चाहता है। जान पड़ता है, इसने दूसरे बाल-बच्चे-स्त्री आदि बना लिये हैं। अब हम लोगो की आवश्यकता नहीं रही। एक को तो युद्ध मे भेज ही दिया, दूसरे को भी—

पिता—वह तेरे लिए सुवर्ण लाने गया है। पिशाचिनी! तू मा है, तुझे आभूषणो की इतनी आवश्यकता!

लड़का—अच्छा, तो फिर जाता हूँ। (उठता और गिर पड़ता है)

पिता—तू ही दे दे, इस खेतिहर गॅवार को जाने दे।

(पिता क्रोध से चला जाता है)

माता—अच्छा लो, पर फिर न मॉगना। (देती है)

लड़का—(लेता हुआ) नहीं, ऑख खुलने तक नही। अभी एक नींद सो लेने दे। हॉ री मा! तू कुछ गाना नही जानती, वह तो—आह! (लेटता है)

माता—कैसा सीधा लड़का है। (हँसती है) मुझसे गाने के लिए कहता है! (जाती है)

छठा दृश्य

स्थान—नवीन नगर की एक गली

(नागरिकों का प्रवेश)

१ नागरिक—सब ठीक है ! कामना ने यदि उन विचार-प्रार्थियों के कहने से कुछ भी इस नगर पर अत्याचार किया, तो हम लोग उसका प्रतिकार करेंगे !

२ नागरिक—वह क्या ?

१—विलास को यहाँ का राजा बनावेंगे और कामना को बन्दी ।

२—यहाँ तक ?

१—बिना राजा के हम लोगों का काम नहीं चलेगा । यह तुच्छ स्त्री—कोमल हृदय की पुतली शासन का भेद क्या जानेगी ।

२—क्या और लोग भी इसके लिए प्रस्तुत हैं ?

१—सब ठीक है, अवसर की प्रत्याशा है । चलो, आज दम्भदेव के यहाँ उत्सव है । तुम चलोगे कि नहीं ?

२—हाँ-हाँ, चलूँगा ।

(दोनों जाते हैं)

(करुणा का सन्तोष को लिये हुए प्रवेश)

करुणा—किससे पूछूँ—भाई सन्तोष, थोड़ी देर यहीं बैठो, मैं क्रूर का घर पूछ आती हूँ। बड़ी पीड़ा होगी। आह-आह! (सहलाती है)

सन्तोष—करुणे! मैं तुम्हारे अनुरोध से यहाँ चला आया हूँ। मुझे तो इस वैद्य के नाम से भी निर्वेद होता है।

करुणा—मेरे लिए भाई—मेरे लिए! बैठो, मैं आती हूँ— (जाती है)

(एक नागरिक का प्रवेश)

नागरिक—(सन्तोष को देखकर) तुम कौन हो जी?

सन्तोष—मनुष्य—और दुखी मनुष्य!

नागरिक—तब यहाँ क्या है जो किसी के घर पर बिना पूछे बैठ गये?

सन्तोष—यह भी अपराध है? मै पीड़ित हूँ, इसी से थोड़ा विश्राम करने के लिए बैठ गया हूँ।

नागरिक—अभी नगर-रक्षक तुम्हे पकड़कर ले जायगा। क्योंकि तुमने मेरे अधिकार मे हस्तक्षेप

किया है। बिना मेरी आज्ञा लिये यहाँ बैठ गये। क्या यह कोई धर्मशाला है ?

सन्तोष—मैं तो प्रत्येक गृहस्थ के घर को धर्मशाला के रूप मे देखना चाहता हूँ, क्योकि इसे पापशाला कहने मे संकोच होता है !

नागरिक—देखो इस दुष्ट को। अपराध भी करता है और गालियाँ भी देता है। उठ जा यहाँ से, नहीं तो धक्के खायगा !

सन्तोष—हे पिता ! तुम्हारी संतान इतनी बँट गई है।

नागरिक—क्या हिस्सा भी लेगा ? उठ-उठ—चल—

सन्तोष—भाई, मैं बिना किसी के अवलम्ब के चल नहीं सकता। मेरी बहन आती है, मैं चला जाऊँगा।

नागरिक—क्या तेरी बहन !

सन्तोष—हाँ—

नागरिक—(स्वगत) आने दो, देखा जायगा।

(दौड़ती हुई करुणा का प्रवेश, पीछे मद्यप दुर्वृत्त)

दुर्वृत्त—ठहरो सुन्दरी ! मुझे विश्वास है कि

तुमको न्यायालय की शरण लेनी पड़ेगी—मैं व्यवस्था बतलाऊँगा, तुम्हारी सहायता करूँगा, तुम सुनो तो। हाँ—क्या अभियोग है ? किसी ने तुम्हे—ऐं।

करुणा—(भयभीत) भाई सन्तोष! देखो यह मद्यप।

दुर्वृत्त—चलो, तुम्हें भी पिलाऊँगा। बिना इसके न्याय की बारीकियाँ नहीं सूझतीं—हाँ, तो फिर एक चुम्बन भी लिया—यही न!

करुणा—नीच—दुराचारी!

सन्तोष—क्यों नागरिक! यही तुम्हारा सभ्य व्यवहार है ?

दुर्वृत्त—अनधिकार चेष्टा—मूर्ख! तू भी न्याया-लय से दंड पावेगा—तुम साक्षी रहना नागरिक!

नागरिक—(करुणा की ओर देखता हुआ) सुन्दर है! हाँ-हाँ, यह तो अनधिकार चेष्टा प्रारम्भ से ही कर रहा है; बिना मुझसे पूछे यहाँ बैठ गया और बात भी छीनता है।

सन्तोष—मैं चिकित्सा के लिए यहाँ आया हूँ। क्यों मुझे तुम लोग तंग कर रहे हो—चलो करुणा, हम लोग चलें।

दुर्वृत्त—वाह ! चलो चलें ! ए—तुम्हे परिचय देना होगा, तुम असभ्य बर्बर यहाँ किसी बुरी इच्छा से आये होगे। नागरिक ! बुलाओ शान्तिरक्षक को।

सन्तोष—(हँसकर) शान्ति तुम्हारे घर कहीं है भी जो तुम उसकी रक्षा करोगे ? बाबा, हम लोग जाते हैं, जाने दो।

दुर्वृत्त—परिचय देना होगा तब—

करुणा—परिचय देने में कोई आपत्ति नही है। मैं मृत शान्तिदेव की बहन हूँ।

(दुर्वृत्त आँख फाड़कर देखता है)

नागरिक—तब यह तुम्हारा भाई कैसे ? इसमें कुछ रहस्य है।

दुर्वृत्त—तुम क्या जानो, चुप रहो। (करुणा से) हाँ, तो तुम्हारा तो बड़ा भारी अभियोग है, न्यायालय अवश्य तुम्हे सहायता देगा। क्यो, तुमने शान्तिदेव का धन कुछ पाया ? अकेली लालसा उसे नही भोग सकती। तुम्हारा भी उसमे कुछ अंश है।

नागरिक—हाँ, यह तो ठीक कहा—

करुणा—मुझे कुछ न चाहिये। मुझे जाने की आज्ञा दीजिये।

दुर्वृत्त—नहीं, मैं अपने पवित्र कर्त्तव्य से च्युत नहीं हो सकता। तुम्हारा उचित प्राप्य न्यायालय की सहायता से दिलाना मेरा कर्त्तव्य है। तुम व्यवहार लिखाओ।

सन्तोष—हम लोगों को कुछ न चाहिये।

(क्रूर का प्रवेश)

दुर्वृत्त—आओ नागरिक क्रूर! यह तुमसे चिकित्सा कराने बड़ी दूर से आया है।

क्रूर—(सन्तोष को देखता हुआ) यह! अरे इसकी तो टाँग सड़ गई है, भयानक रोग है, इसको काटकर अलग कर देना होगा।

सन्तोष—हे देव! यह क्या लीला है! ये सब पिशाच है कि मनुष्य! मुझे चिकित्सा न चाहिये, मुझे जाने दो।

नागरिक—नगर का दुर्नाम होगा, ऐसा नहीं हो सकता। तुम्हे चिकित्सा करानी होगी। मै शस्त्र ले आता हूँ। (जाता है)

(प्रमदा का सहेलियों के साथ नाचते हुए आना, दूसरी ओर से दम्भ का अपने दल के साथ)

दम्भ—क्यों दुर्वृत्त ! क्रूर ! तुम लोग अभी उत्सव में नहीं मिले।

क्रूर—कुछ कर्त्तव्य है आचार्य ! यह पीड़ित है, इसकी चिकित्सा—

दम्भ—(सन्तोष को देखकर) छिः-छिः ! पवित्र देवकार्य के समय तुम इस अस्पृश्य को छुओगे ? (सन्तोष से) जा रे, भाग।

दुर्वृत्त—(धीरे से) यह शान्तिदेव की बहन है। उसके पास अपार धन था। इसे न्यायालय मे ले चलूँगा और क्रूर को भी इसकी चिकित्सा से कुछ मिलेगा। हम दोनों का लाभ है।

दम्भ—यह सब कल होगा। (नागरिक से) यह तुम्हारा घर है न ?

नागरिक—हाँ।

दम्भ—आज इसे तुम अपने यहाँ रक्खो। कल इसकी चिकित्सा होगी। और प्रमदा ! इस सुन्दरी को देवदासी के दल में सम्मिलित कर लो। इसके लिए न्यायालय का प्रबन्ध कल किया जायगा। आज पवित्र दिन है, केवल उत्सव होना चाहिये।

(नागरिक सन्तोष को पकड़ता है, और प्रमदा एक मद्यप के साथ करुणा को खींचती है। विवेक दौड़कर आता है)

विवेक—कौन इस पिशाच-लीला का नायक है।

(सब सहम जाते है। विवेक सबसे छुड़ाकर दोनों को लेकर हटता है)

दम्भ—तू कौन इस उत्सव मे धूमकेतु-सा आ गया ? छोड़कर चला जा, नही तो तुझे पृथ्वी के नीचे गड़वा दूँगा।

विवेक—मैं चला जाऊँगा। फूल के समान आया हूँ, सुगन्ध के सदृश जाऊँगा। तू बच, देख उधर।

(सब उसे पकड़ने को चंचल होते है, विवेक दोनों को लिये हटता है। भूकम्प से नगर का वह भाग उलट-पलट हो जाता है)

सातवॉ दृश्य

स्थान—आक्रांत देश का एक गाँव

(एक बालिका और विवेक)

बालिका—आज तक तो हमारे ऊपर अत्याचार होता रहा है, परंतु कोई इतनी मित्रता नहीं दिखलाने आया। तू आज छल करने आया है।

विवेक—नही मा, जा बड़े-बूढ़ो को बुला ला।

बालिका—परंतु—

विवेक—हाय रे पाप! इन निरीह बालको मे भी विश्वास का अभाव हो गया है। विश्वास करो मा, बुला लो।

(बालिका जाती है, चार वृद्ध और युवक आते है)

विवेक—मै उसी शापित देश का हूँ, जिसमे सोने की ज्वाला धधक उठी है, मदिरा की बन्या बाढ़ पर है। क्या मुझ पर विश्वास करोगे ?

युवक—कहो, तुम्हारा प्रयोजन सुन ले।

विवेक—हमारे और तुम्हारे देश की सीमा मे एक नया राज्य स्थापित हो गया है। वह हमारे देश के विद्रोहियो का एक घृणित संगठन है। उसने अत्याचार का ठेका ले लिया है। उससे क्या हम-तुम दोनो बचना चाहते हैं ?

युवक—परंतु उपाय क्या है ?

विवेक—हम लोगों को भाई समझकर मित्र-भाव की स्थापना करो, और इनके अत्याचारों से रक्षा करो। हम परस्पर दूसरे के सहायक हो।

युवक—किस प्रकार ?

विवेक—आज न्यायालय मे विचार होनेवाला है, और तुम्हारे देश के जो दो बंदी हुए हैं, उन्हे दंड मिलेगा। हम लोगो में से बहुतेरे उसके विरुद्ध हैं। यदि तुम लोग भी हमारी सहायता करो, तो इस भीषण आतंक से सबकी रक्षा हो।

युवक—हम लोग ठीक समय पर पहुँचेंगे। परंतु वहाँ तक जाने कैसे पावेंगे?

विवेक—हमारी सेवा से जितने आहत अच्छे हो चुके है, उन्हीं लोगो के दल के साथ। और, इस अच्छे कर्म के लिए बहुत सहायक मिलेंगे।

युवक—अच्छा, तो हम जाते हैं।

विवेक—तुम्हारा कल्याण हो।

(युवक और उसके साथी जाते हैं, दूसरी ओर से वही बालिका दौडती हुई आती है। पीछे दो उन्मत्त मद्यप हैं)

बालिका—दोहाई है, बचाओ! बचाओ!

मद्यप सैनिक—सुंदरी, इतनी दौड़-धूप करने पर तो प्रेम का आनंद नहीं रहता। माना कि यह भी एक भाव है, पर वह मुझे रुचिकर नहीं। सुन तो लो—

(पकड़ता है)

बालिका—अरे, तुम क्या मनुष्यता को भी मदिरा के साथ घोलकर पी गये हो!

सैनिक—मदिरा के नाम से वही तो पीता हूँ।

विवेक—(आगे बढ़कर) क्यों, तुम वीर सैनिक हो न?

सैनिक—क्या इसमें भी संदेह है?

विवेक—डरपोक, कायर! छोड़ दो, नहीं तो दिखा दूँगा कि इन सूखी हड्डियों में कितना बल है।

सैनिक—जा पागल! तू क्यों मरना चाहता है?

विवेक—दूसरे की रक्षा में, पाप का विरोध और परोपकार करने में प्राण तक दे देने का साहस किस भाग्यवान् को होता है? नीच! आ, देखूँ तो!

(सैनिक तलवार से प्रहार करने को उद्यत होता है। विवेक सामने तन कर खड़ा होता और उसकी कलाई पकड़ लेता है)

सैनिक—अब छोड़ दो, हाथ टूटता है।

विवेक—(छोड़कर) इसी बल पर इतना अभिमान! जा, अब सीधा हो जा। देश का कलंक धोने में हाथ बँटा, कल परीक्षा होगी।

सैनिक—पिता! क्षमा करो, जो आज्ञा होगी,

मैं और मेरे साथी, सब वही करेंगे।

विवेक—स्मरण रखना।

(दोनो सिर झुकाकर जाते है)

आठवॉ दृश्य

स्थान—सैनिक न्यायालय

(रानी और सैनिक लोग बैठे है। एक ओर से विलास, दूसरी ओर से लालसा का प्रवेश)

विलास—रानी, यह बंदी स्त्री बड़ी भयानक है। हमारी सेना के समाचार लेने आई थी। इसको दंड देना चाहिये।

लालसा—और एक व्यक्ति मेरे मंडप में भी है। वह भी कुछ ऐसा ही जान पड़ता है। दोनो का साथ ही विचार हो।

(रानी के संकेत करने पर चार सैनिक जाते और दोनों को ले आते हैं। शत्रु सैनिक और स्त्री, दोनों एक दूसरे को देखते और चीत्कार करते हैं)

विलास—यह स्त्री प्राणदंड के योग्य है। इसने सेना का सब भेद जान लिया था। यदि यह पकड़ न

ली जाती, तो उस दिन के युद्ध में हम लोगों को पराजित होना पड़ता ।

लालसा—और सीमा पर मैं इस पुरुष से मिली । यदि मैं इसे भुलावा देकर न ले आती, तो यह मेरा बड़ा अपमान करता, जो इस जाति के लिए बड़े कलंक की बात होती ।

रानी—विलास !

विलास—कुछ नही रानी, इन्हे प्राणदंड ?

लालसा—इनसे पूछने की क्या आवश्यकता है ? हम लोगो का कहना ही क्या इनके लिए यथेष्ट प्रमाण नहीं है ?

सब सैनिक—हाँ, हाँ, सेनापति का अनुरोध अवश्य माना जाय ।

कामना—तब मुझे कुछ कहना नही है ।

विलास—(सैनिको से) दोनो को इसी वृक्ष से बाँध दो, और तीर मारो ।

स्त्री—क्यो शत्रु-सेनापति ! स्त्री पर अत्याचार न कर पाने पर उसका प्राण लेना ही न्याय है ? परंतु प्राण तुम ले सकते हो, मेरा अमूल्य धन नही ।

शत्रु-सैनिक—सुंदरी लालसा, तुम स्त्री हो या पिशाचिनी ?

लालसा—जा, जा, मर ।

(दोनों को बाँधकर तीर मारे जाते हैं)

(एक सैनिक का प्रवेश)

सैनिक—रानी, द्वेष ने मुझे सोते मे छुरा मार-कर घायल किया है । न्याय कीजिये ।

दूसरा—प्रमदा मेरे आभूषणों की पेटी लेकर दुर्वृत्त के साथ भाग गई । उससे मेरे आभूषण दिला दिये जायँ ।

तीसरा—रानी, मै बड़ा दुखी हूँ । मेरा मदिरा का पात्र किसी ने चुरा लिया । मै बड़े कष्ट से रात बिताता हूँ ।

चौथा—नवीना मेरी विश्वासपात्र प्रेमिका बन-कर गहने के लोभ से स्वर्णभूति के साथ जाने के लिए तैयार है । उसे समझा दिया जाय, अन्यथा मै आत्महत्या करूँगा ।

पाँचवाँ—रानी, मेरा लड़का सब धन बेचकर मदिरा पी आता है, उससे मेरा सम्बंध छुड़ा दिया जाय ।

एक स्त्री—मुझे विश्वास देकर, कौमार-भंग करके अब यह मद्यप मुझसे व्याह नहीं करता।

एक दूत—(प्रवेश करके) जिस नवीन नगर की प्रतिष्ठा कुछ लोगो ने की थी, जिसमे बहुत-से अपराधी जाकर छिपे थे, वह नगर अकस्मात भूकम्प से भूगर्भ मे चला गया।

रानी—ठहरो। मुझे पागल न बनाओ। अपराधो की आँधी! चारो ओर कुकर्म! ओह!

(एक आठ वर्ष का बालक दौडा आता और दंडितो के शवो पर गिर पड़ता है। कामना उठकर खडी हो जाती है)

कामना—बालक, तुम कौन हो?

बालक—(रोता हुआ) मेरी मा, मेरे पिता—

कामना—क्यो विलास, यह क्या हुआ?

लालसा—ठीक हुआ।

कामना—लालसा, चुप रहो। तुम न मंत्री हो, और न सेनापति।

लालसा—हाँ, मैं कुछ नही हूँ—तो फिर—

विलास—उन्हे उपयुक्त दंड दिया गया।

कामना—यदि राजकीय शासन का अर्थ हत्या और अत्याचार है, तो मैं व्यर्थ रानी बनना नही

चाहती। मेरी प्रजा इस बर्बरता से जितना शीघ्र छुट्टी पावे, उतना ही अच्छा। (मुकुट उतारती हुई) यह लो, इस पाप-चिह्न का बोझ अब मै नही वहन कर सकती। यथेष्ट हुआ। प्यारे देशवासियो, लौट चलो, इस इन्द्रजाल की भयानकता से भागो। मदिरा से सिंचे हुए चमकीले स्वर्ण-वृक्ष की छाया से भागो।

(सिहासन से हटती है)

(विवेक का उन्मत्त भाव से प्रवेश। कामना बालक को गोद मे लेती है)

विवेक—बहुत दिन हुए, जब मैने कहा था कि 'भागो-भागो।' तब तुम्ही सब लोगो ने कहा था कि 'पागल है,' और मै पागल बन गया। (देखकर) कामना, आहा मेरी पगली लड़की। आ, मेरी गोद मे आ—चल, हम लोग वृक्षो की शीतल छाया मे लौट चलें।

(कामना दौड़कर विवेक से लिपट जाती है)

विनोद—मदिरा और स्वर्ण के द्वारा हम लोगो मे नवीन अपराधो की सृष्टि हुई, और हुई एक महान् माया-स्तूप की रचना। हमारे अपराधो ने राजतंत्र की अवतारणा की। पिता की सदिच्छा, माता का

स्नेह, शील का अनुरोध हम लोगो ने नहीं माना। तब अवश्य दंड के सामने सिर झुकाना पड़ेगा। कामना, हम सब तुम्हारे साथ है।

विलास—सज्जनो! सैनिको! देश दरिद्र है, भूखा है। क्या तुम लोग इन देश-द्रोहियो के पीछे चलोगे? यह भी क्या खेल है?

विवेक—खेल था, और खेल ही रहेगा। रोकर खेलो चाहे हँसकर। इस विराट् विश्व और विश्वात्मा की अभिन्नता, पिता और पुत्र, ईश्वर और सृष्टि, सबको एक मे मिलाकर खेलने की सुखद क्रीड़ा भूल जाती है, होने लगता है विपमता का विषमय द्वंद्व। तब सिवा हाहाकार और रुदन के क्या फैलेगा? हँसने का काम भूल गये। पशुता का आतंक हो गया। मनुष्यता की रक्षा के लिए, पाशवी वृत्तियो का दमन करने के लिए राज्य की अवतारणा हो गई; परंतु उसकी आड़ मे दुर्दमनीय नवीन अपराधो की सृष्टि हुई। इसका उद्देश तब सफल होगा, जब वह अपना दायित्व कम करेगी—जनता को, व्यक्ति को, आत्मसंयम और आत्मशासन सिखाकर विश्राम लेगी। जब अपराधों की मात्रा घटेगी, और क्रमशः समूल नष्ट होगी, तब

संघर्षमय शासन स्वयं तिरोहित होगा। आत्मप्रतारको उस दिन की प्रतीक्षा मे कठोर तपस्या करनी होगी, जिस दिन ईश्वर और मनुष्य, राजा और प्रजा, शासित और शासको का भेद विलीन होकर विराट् विश्व, जाति, और देश के वर्णों से स्वच्छ होकर एक मधुर मिलन-क्रीड़ा का अभिनय करेगा।

विनोद—आओ, हम सब उस मधुर मिलन के योग्य हों। उस अभिनय का मंगल-पाठ पढ़ें।

(अपना स्वर्णपट्ट और आभूषण उतारकर फेकता है। लीला भी उसका अनुकरण करती है)

लीला—जितने भूले-भटके होंगे, वे इन्हीं पागलो के पीछे चलेंगे। हम अपने फूलो के द्वीप से काँटो को चुनकर निकाल बाहर करेंगे।

(बहुत-से लोग अपने स्वर्ण-भूषण और मदिरा के पात्र तोड़ते हैं। विलास और लालसा आश्चर्य के भाव से देखते हैं)

विलास—सैनिको, तुम्हारी क्या इच्छा है? तुम वीर हो। क्या तुम इन्हीं का-सा दीन और निरीह जीवन बिताओगे? क्या फिर उसी दुःख-पूर्ण देश में जाओगे, जहाँ न तो सोने के पान-पात्र हैं, और न माणिक के रंग की मदिरा?

कुछ लोग—हम लोग यहीं नगर बसाकर रहेंगे।

एक—और तुम हमारे राजा बनो।

(वह गिरा हुआ मुकुट उसे पहनाता है। लालसा भी रानी का स्थान ग्रहण करने के लिए आगे बढ़ती है। 'ठहरो-ठहरो' कहते हुए दोनो ओर से सैनिकों के साथ संतोष का प्रवेश)

विवेक—सन्तोष! तुमने बहुत विलम्ब किया।

आगन्तुक सैनिक—क्या, यह हत्या? तुम हत्या करके भी यह साहस करते हो कि हम लोग तुम्हे अपना सर्वस्व माने! यह ठीक है कि हम लोगों को विधि-निषेधात्मक एक सर्वमान्य सत्ता की अब आवश्यकता हो गई है; परंतु तुम कदापि इसके योग्य नहीं हो। सोने से लदी हुई लालसा रानी! और मदिरा से उन्मत्त विलास राजा!! आश्चर्य!!!

(विलास के साथी सैनिक भी स्वर्ण और अस्त्र रख देते हैं)

कामना—सन्तोष! प्रिय सन्तोष!

सन्तोष—मेरी मधुर कामना—

(दोनों हाथ पकड़ लेता है)

विलास—तब लालसा?

लालसा—अनंत समुद्र मे, काल के काले परदे मे, कहीं तो स्थान मिलेगा—चलो विलास!

(दोनो जाते हैं)

(परिवर्तित दृश्य । समुद्र मे नौका पर विलास और लालसा । सब नागरिक उस पर स्वर्ण फेकते है । नाव डगमगाती है, लालसा का क्रन्दन—'सोने से नाव डूबी, अब नहीं, बस' । तुमुल तरंग । परिवर्तित दृश्य मे अंधकार । दूसरी ओर आलोक । फूलों की वर्षा)

(समवेत स्वर से गान)

खेल लो नाथ, विश्व का खेल ।
राजा बनकर अलग न बैठो, बनो नहीं अनमेल ॥
वही भाव लेगी फिर जनता, भूल जायगी सारी समता ।
कहाँ रही प्यारी मानवता, बढ़ी फूट की बेल ॥
रुदन, दुःख, तम-निशा, निराशा, इन द्वंद्वों का मिटे तमाशा ।
स्मित आनंद उषा औ' आशा, एक रहे कर मेल ॥
हम सब है हो चुके तुम्हारे, तुम भी अपने होकर प्यारे ।
आओ, बैठो साथ हमारे, मिलकर खेले खेल ॥

[यवनिका-पतन]

ॐ

सुबोध काव्य-माला

१—विद्यापति की पदावली

अखिल-भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की उत्तमा-परीक्षा में स्वीकृत पाठ्यग्रंथ

सम्पादक—श्रीरामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी, 'बालक'-सम्पादक

मासिकपत्रों की महारानी 'माधुरी' लिखती है—

इस पुस्तक में मैथिल-कोकिल विद्यापति के २६५ पद्यों का संग्रह है। इसमे कोई संदेह नहीं कि श्रृंगारी कवियों मे उनका उच्च स्थान है। तीन-तीन प्रान्तों मे उनकी कविता का आदर है। उनकी भाषा में जो माधुर्य है, वह अलंकृत-काल के अनेक कवियों में, अस्वाभाविक रूप से प्रयत्न करने पर भी, नही आया। उनकी कविता में स्वाभाविकता का सर्वत्र प्रमाण मिलता है। हिन्दी श्रृंगारी कवियों मे 'हृदय-हीनता' का जो दोषारोपण किया जाता है, उससे वह सर्वथा विमुक्त हैं। प्रस्तुत पुस्तक में, आरम्भ के ५० पृष्ठों में, विद्यापति का परिचय दिया गया है। उनके सम्बन्ध में जितनी जानने योग्य बातें हैं, उन सबका बहुत अच्छी तरह विवेचन किया गया है। भारतीय कला के सुप्रसिद्ध चित्रकार धुरंधर महाशय के ९ चित्रों ने इस पुस्तक की शोभा को कई-गुना बढ़ाकर काव्य और चित्रकला का परस्पर गहन सम्बन्ध पूर्ण रीति से प्रगट कर दिया है। यह संस्करण बहुत ही अच्छा निकला। पाद-टिप्प-णियाँ बहुत ही उपयोगी हैं। इस संस्करण की उपयोगिता के विषय

में हम केवल यही कह सकते है कि हमारे एक मित्र, जो हिन्दी-साहित्य से सर्वथा विरक्त थे, इन पाद-टिप्पणियों की सहायता से विद्यापति का अध्ययन करके ही, हिन्दी-साहित्य के उपासक बन गये । *Lala Lajpat Rai's world-renowned weekly 'The People' writes* —Vidyapati is one of the most brilliant jewels of the classical Hindi literature. His place in the History of Hindi poetry is unique. He is second to Surdas only in beautifully depicting Radha's passion His choice of words is matchless and most appropriate In sweetness and eloquence he excells all Hindi writers of his age Pandit Rama Briksha Sharma of Benipur has brought out a beautiful selection of Vidyapati's poem of concise form. The book contains a beautiful preface which gave Vidyapati's life and an estimate of his poetry Every reader of the beautiful selection of Vidyapati's poems is sure to be rewarded with delight and pleasure that are the fruit of literary pursuits

सुन्दर रेशमी जिल्द, सुन्दर नौ चित्र, रेशमी बुकमार्क और चिकने आवरण आदि से सुशोभित, मूल्य २)

२—बिहारी-सतसई

टीकाकार—श्रीरामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी

केवल छः महीने मे प्रथम संस्करण बिक गया ।

अबतक सतसई की जितनी टीकायें निकली हैं, यह उन सबसे सुन्दर, सरल, सुसम्पादित और सस्ती है । यह परिष्कृत और

सम्वर्द्धित द्वितीय संस्करण पहले संस्करण से सुन्दरता, सरलता और सस्तापन, सभी में बढ़ा-चढ़ा है। प्रत्येक दोहे के नीचे उसका स्पष्ट अन्वय, अन्वय के नीचे अत्यन्त सरल भाषा में प्रामाणिक अर्थ, अर्थ के नीचे कठिन शब्दों के सरलार्थ, नोट में दोहे की खूबियाँ और उस दोहे के समान अर्थ वाले उर्दू तथा संस्कृत भाषाओं के अवतरण दिये गये हैं। थोड़ा पढ़ा-लिखा व्यक्ति भी इसे पढ़कर सतसई का पूरा मजा लूट सकता है। टीकाकार ने कवि के गूढ़ आशय की बारीक सरसता को साफ आइने की तरह झलका दिया है। आरम्भ में सरस-साहित्य-शिल्पी बाबू शिवपूजन-सहाय-लिखित 'सतसई का सौन्दर्य'-शीर्षक एक सरस निबन्ध है, जिसे पढ़कर बरबस मुग्ध हो जाना पड़ता है। इस नये संस्करण में दोहों की संख्या के साथ-साथ विषय-वर्णन-सूची भी जोड़ दी गई है। छपाई-सफाई की शुद्धता और सादगी देखने ही योग्य। पाकेट साइज। पृष्ठ-संख्या ४०० । सुन्दर सादा कवर-सहित का मूल्य १।), कपड़े की जिल्द १॥)

सुन्दर-साहित्य माला

१—पद्य-प्रसून

रचयिता—साहित्यरत्न पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध

'**सम्मेलन-पत्रिका**' लिखती है—कविवर उपाध्यायजी के सरस पद्यों का यह एक सुन्दर संग्रह है। उपाध्यायजी के कवित्व पर कौन संदेह कर सकता है। आपकी प्रतिभा वास्तव में ऊँची और मनोमुग्धकारिणी है। हिन्दी-संसार को उपाध्यायजी की रचनाओं पर अभिमान है। वास्तव में वह एक युग के कवि हैं।

उन्हीं की सुन्दर कविताओं का इस पुस्तक में संकलन किया गया है। पावन प्रसंग, जीवन-स्रोत, सुशिक्षा-सोपान, जीवनी-धारा, जातियता-ज्योति, विविध विषय आदि विषयो में कवितायें विभक्त की गई हैं। अन्त में 'बालविलास' नाम के विभाग में बाल-सम्बन्धी कविताओं का बडा सुन्दर संग्रह किया गया है। प्रकाशक महाशय ने उपाध्यायजी की सुन्दर कविताओं का संग्रह प्रकाशित कर वास्तव में प्रशंसनीय कार्य किया है, जिसके लिए हम उन्हे बधाई देते है।

पृष्ठ-संख्या लगभग ३००, कागज मोटा, छपाई सुन्दर, जिल्द पक्की, मूल्य १॥)

२—दागे 'जिगर'

लेखक—साहित्य-भूषण श्रीरामनाथलाल 'सुमन'

कानपुर का प्रतापी साप्ताहिक 'प्रताप' लिखता है—

'जिगर' महाशय उर्दू के एक प्रसिद्ध कवि हैं। कविता वह है, जिसमें कवि का हृदय प्रतिबिम्बित हो, और जिसे पढते ही पाठक के दिल में एक खास तरह की गुदगुदी हो उठे। 'जिगर' प्रकृत कवि हैं। उनके कलाम लाजवाब हैं। 'जिगर' अपनी रचनाओं में बहुत ऊँचे उठे हैं और कही-कहीं तो वे 'बेखुदी' के सुखद सरोवर में इतना ऊँचे उठे हैं कि सरोवर के किनारे खड़े रहने वाले को दिखाई भी नहीं पड़ते। 'जिगर' की भावपूर्ण रचनाओं पर 'सुमनजी' की टिप्पणियाँ बहुत सुन्दर हैं। उनसे उर्दू का स्वल्प ज्ञान रखने वालों को भी 'जिगर' की रचनायें समझने में बड़ी मदद मिलेगी। 'सुमनजी' स्वयं कवि हैं। दर्द-भरे दिल की बात समझकर एक वैसा ही हृदय उस पर वास्तविक प्रकाश डाल सकता है। हमें आशा है कि यह पुस्तक हिन्दी के काव्य-साहित्य मे यथेष्ट आदर पावेगी।

छपाई-सफाई दर्शनीय। पक्की जिल्द। मू० १।)

३—निर्माल्य

रचयिता—कविरत्न पं० मोहनलालमहतो गयावाल 'वियोगी'

'सम्मेलन पत्रिका' लिखती है—पुस्तक अत्यन्त उत्तम और हिन्दी कविता-क्षेत्र की एक नई वस्तु है। कवि सहृदय हैं। आपकी कविता अति उच्च श्रेणी की होती है। 'निर्माल्य' की-सी कवितायें हिन्दी-जगत् में युगपरिवर्त्तन करने मे सहायक हो सकती है। हमें आशा है, 'निर्माल्य' की गिनती उन पुस्तकों में होगी, जिन पर खड़ी बोली कुछ अभिमान कर सकती है।

Mahamahopadhyay Dr Ganganath Jha, M.A., D. Lit. *Vice Chancellor, Allahabad University* writes —Many thanks for the copy of Nirmalya It is refreshing to find a young poet *beating out a new path* for himself and succeeding therein I have read the poems with great interest. I wish the writer every success in life

प्रयाग की प्रसिद्ध मासिकपत्रिका 'मनोरमा' लिखती है—नवीन युग के कवियों मे श्रीमोहनलाल महतो का एक खास स्थान है। आपकी प्रतिभा वास्तव में प्रखर और उच्च है। हमने इस पुस्तक को आदि से अन्त तक पढ़ा। प्रत्येक छन्द दार्शनिक भावों से भरा हुआ है। पुस्तक बहुत सुन्दर छपी हुई है। हम हिन्दीवालों से सिफारिश करते है कि वे इस नवीन काव्यग्रंथ को अवश्य देखें। **Dr. Sir Rabindranath Tagore's Private Secretary** *writes* —Dr. Tagore sends his best thanks for copy of your book of verses Nirmalya He si impressed by the use you have made of new metres and rhyme combinations in your poetry The book

is sent on to our library where it will be read with interest by our scholars working on Hindi.

देशमान्य श्री बाबू राजेन्द्रप्रसादजी, एम. ए., एम. एल लिखते हैं—मैं 'निर्माल्य' को प्राय: आद्योपान्त पढ़ गया, और कुछ अंशों को तो एक बार से अधिक। हिन्दी-कविता में एक बड़ा परिवर्त्तन होता दीख रहा है, और आपका 'निर्माल्य' भी उस परिवर्त्तन में सहायता पहुँचा रहा है। भाव और भाषा में सामञ्जस्य है। अनेक स्थानों पर भाव और भाषा दोनों का ही बड़ा उत्कर्ष है। आशा है, आपके द्वारा मातृभाषा के पुनीत चरणों पर ऐसे ही अलौकिक 'निर्माल्य' चढ़ते रहेंगे।

सुन्दर रेशमी जिल्द, रचयिता का सचित्र परिचय, मूल्य १)

४—महिला-महत्त्व

लेखक—श्रीशिवपूजनसहाय

'ब्राह्मण सर्वस्व' (होलिकांक) लिखता है—श्रीयुक्त बा० शिवपूजन सहायजी सरस एवं गद्यकाव्य के लक्षणों से समन्वित भाषा लिखने में सिद्धहस्त हैं, यद्यपि इसका आभास हम उनके सम्पादित मासिकपत्रों में ही पा चुके हैं, पर इस पुस्तक को देखने से यह भाव और भी पुष्ट हो गया है। इस पुस्तक में १० महत्त्वपूर्ण आख्यायिकायें हैं। इनकी सामग्री का सग्रह टाड साहब के राजस्थान से एवं जनश्रुत घटनाओं से किया गया है, पर भाषा और भाव आदि सभी लेखक के होने से इसको लेखक की मौलिक रचना कहना सर्वथा उपयुक्त है। इसकी भाषा सरसा, सालंकारा और सानुप्रासा है। इसमें संस्कृत गद्यकाव्य कादम्बरी की छटा दिखलाई पड़ती है। हिन्दी-उर्दू के वर्तमान और प्राचीन कवियों की कवितायें भी यत्रतत्र उद्धृत की गई हैं।

पुस्तक की भाषा इतनी सुन्दर है और पतिव्रता नारियों का चरित्र-चित्रण इतना मनोरम हुआ है कि एक-आध दोष चद्रमा में कलंक की तरह उसकी शोभा को बढ़ाने वाला ही है। छपाई और कागज आदि सुन्दर है। सचित्र। मूल्य २)

५—कविरत्न 'मीर'

लेखक—साहित्य-भूषण श्रीरामनाथलाल 'सुमन'

कलकत्ते का प्रसिद्ध पत्र 'मतवाला' लिखता है—

'कविरत्न मीर'—मजबूत जिल्द से ढँकी हुई, छपाई-सफाई और कागज प्रशंसनीय। श्रीयुत 'प्रेमचंद'जी का दो शब्द, बाबू शिवपूजनसहायजी का 'परिचय' और फिर लेखक का लिखा 'बेहोश लहरों में' इस पुस्तक के अग्र भाग की शोभा बढा रहे हैं। 'दागे जिगर' की अपेक्षा 'कविरत्न मीर' की समालोचना मे 'सुमनजी' अधिक सफल हुए हैं।...अर्थ सुमनजी ने बड़ा ही साफ और मर्मस्पर्शी किया है। पढ़कर एकाएक हृदय काँप उठता है। 'सुमनजी' वास्तव में कविता के मर्मज्ञ हैं। समालोचना सूक्ष्मदर्शिता की पराकाष्ठा तक पहुँच गई है। खटकने वाला एक शब्द भी नही। इस पुस्तक को पढ़कर 'सुमनजी' की कृपा से 'मीर' की कविता का जो आनन्द मिला, उसकी याद मेरी स्मृति की अन्तिम सामग्री होगी। ऐसी पुस्तकों के प्रकाशक को हजारों धन्यवाद।

ऐसी सर्वप्रशंसित पुस्तक का मूल्य केवल १॥।)

६—बिहार का साहित्य

हास्य-रसावतार पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, गद्य-कवि राजा राधिकारमण प्रसाद सिंहजी, सुसमालोचक बाबू शिवनंदन सहाय, साहित्यमर्मज्ञ पं० सकलनारायण शर्मा और भारतेन्दु के समकालीन

वयोवृद्ध कवि पं० चन्द्रशेखरधर मिश्र के बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अध्यक्ष-रूप से दिये गये भाषणों का यह सुसम्पादित संग्रह है। बिहार-रत्न बाबू राजेन्द्र प्रसाद एम० ए०, एम० एल० आदि पाँच स्वागताध्यक्षों के भाषण भी इसमें संकलित हैं। देखिये, इसके विषय मे **पटने का सुप्रसिद्ध अँगरेजी-द्विदैनिक 'सर्चलाइट' क्या लिखता है**—The gentlemen concerned are wellknown in Hindi literary world and their addresses, both in form and matter, have certainly more than ephemeral interest attached to them. It was therefore a happy idea to bring out a collection of those addresses. We would particularly commend to the readers the remarkable address of Raja Saheb Surajpura. It is all poetry in prose We congratulate the publishers on their happy idea of bringing out this volume

पृष्ठ-संख्या ३००, पाँचो सभापतियोंके चित्र, पक्की जिल्द, मू० १॥)

७—देहाती दुनिया

लेखक—श्रीशिवपूजनसहाय

पटनेका प्रसिद्ध साप्ताहिक 'देश' लिखता है—हिन्दी-संसार में बाबू शिवपूजन सहाय को कौन नहीं जानता। आप हास्यरस के बड़े ही रसिक है। आपने जितनी पुस्तकें लिखी हैं, सब-के-सब चित्ताकर्षक एवं दिल को लोटपोट कर देने वाली हुई हैं। 'देहाती दुनिया' आपकी एक नवीन रचना है। आँखें चाहती हैं, हमेशा उलट-पलटकर देखते ही रहे। गौर कर देखने से ठेठ दिहात का साक्षात् चित्र आँखों के सामने नाचने लगता है।

अखिल-भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की मुख-पत्रिका 'सम्मेलन-पत्रिका' लिखती है—सुन्दर हृदय-ग्राही और उत्कृष्ट हिन्दी-भाषा तथा देवनागरी-लिपि में सुन्दर लेखन (हैंडराइटिंग) के लिए जो शिवपूजन सहाय हिन्दी-संसार में प्रसिद्ध हैं, उन्हीं का लिखा हुआ यह ठेठ दिहाती घटनाओं से पूर्ण एक सामाजिक मौलिक उपन्यास है। इसकी वर्णनशैली रोचक और सजीव एवं कथानक स्वाभाविक चित्ताकर्षक है। सुन्दर और उत्कृष्ट भाषा लिखने में सिद्धहस्त बाबू शिवपूजन सहाय ने देहातियों के लिए उपयुक्त ठेठ हिन्दी मे इस उपन्यास को लिखकर अपनी लेखन-कला-कुशलता का अच्छा परिचय दिया है। मध्यप्रदेश का प्रबल साप्ताहिक 'कर्मवीर' लिखता है—शहराती मनचले अपने अधूरे आदर्शवाद और शाब्दिक ज्ञान के सहारे चाहे पुस्तक का मूल्य नहीं समझें, किन्तु उन ग्रामीणों के लिए—जिनकी जीवन-घटनाओं का अनुभव कर यह पुस्तक लेखक ने लिखी है—मनोरंजन और उपदेश का अच्छा साधन है।

सुन्दर चमकीली जिल्द पर सोने के अक्षरों में नाम, आयल पपर का आवरण, रेशमी बुकमार्क। मूल्य १॥)

८—प्रेम-पथ

लेखक—पंडित भगवतीप्रसाद वाजपेयी

कानपुर का प्रतापी 'प्रताप' अपनी लम्बी समालोचना में लिखता है—पुस्तक एक मौलिक सामाजिक उपन्यास

कहानी, लेखक की शैली, भाषा, चरित्र-चित्रण तथा भाव इतना सुन्दर, प्रिय, साहित्यिक और मनोहर है कि पाठक मानों भा के उद्यान में विचर रहे है। भाषा की दृष्टि से एक बार इन

फिर कहते हैं कि पुस्तक बहुत साहित्यिक और मर्मस्पर्शिनी है।

अपनी आलोचनात्मक भूमिका में प्रेमचंदजी लिखते हैं—

भगवतीप्रसादजी ने हिन्दी-संसार को यह बहुत ही अच्छी वस्तु भेंट की है। इसमे वासना और कर्तव्य का अन्तर्द्वन्द्व देखकर आप दंग हो जायँगे।

अँगरेजी ढंग की पक्की जिल्द, सुनहला नाम, सुन्दर आवरण, रेशमी बुकमार्क, छपाई शुद्ध-सुन्दर, मूल्य २)

९—नवीन वीन

रचयिता—प्रोफेसर लाला भगवान 'दीन'

'सम्मेलन-पत्रिका' लिखती है—यह ग्रंथ प्रोफेसर लाला भगवानदीनजी की ४२ सरस कविताओं का संग्रह है। २० कविताये सचित्र हैं। दीनजी हिन्दी के एक सुप्रसिद्ध समालोचक, ब्रजभाषा के मर्मज्ञ तथा सहृदय कवि है। खड़ी बोली में, उर्दू-कविता के वजन पर, कविताये लिखने मे आप सिद्धहस्त हैं। इस संग्रह में आपकी वीर-रस, प्रकृति-वर्णन, ऋतु-वर्णन तथा देशभक्तिपूर्ण अनेक कविताये बहुत सुन्दर है। आपकी लिखी ब्रजभाषा की कवितायें भी इसमें संग्रहीत है। दीनजी की स्फुट कविताओं का संग्रह अभी तक नहीं निकला था। प्रकाशक ने आपकी कविताओं का संग्रह निकालकर हिन्दी के आधुनिक ख्यातनामा कवियों की कविताओं के संग्रह-साहित्य के एक अभाव की पूर्ति की है।

कागज और छपाई-सफाई सुन्दर, पक्की जिल्द, आर्ट पेपर पर छपे २० चित्र, मूल्य केवल २)

१०—प्रेमिका

अनुवादक—'हिन्दूपंच'-सम्पादक पंडित ईश्वरीप्रसाद शर्मा

यह जगत्प्रसिद्ध उपन्यास-लेखिका 'मेरी कारेली' के सर्वश्रेष्ठ उपन्यास 'थेल्मा' का अत्यंत सरल एवं सरस अनुवाद है। इसमे आदर्श दाम्पत्य प्रेम का चित्ताकर्षक चित्र, नगर और ग्राम की युवतियों के स्वभाव के बारीक भेद, हार्दिक प्रेम का जबरदस्त आकर्षण, प्रेममयी पत्नी की पति-परायणता का अद्भुत गौरव, दिल की सच्ची लगन की अनुपम मधुरता, विलायत का पतित और घृणाजनक सामाजिक जीवन, कुसंगति का भयंकर और घातक दुष्परिणाम, विलायत का अशान्तिप्रद दाम्पत्य-सम्बन्ध, उन्नति और सभ्यता की बनावटी खाल से ढके हुए छल-दम्भ बड़े ही प्रभावशाली ढंग से अंकित हैं। लेखिका की मनोहर वर्णनशैली को भावुक अनुवादक की धारा-प्रवाह भाषा ने ऐसा सजीव बना दिया है कि देखते ही बनता है। रेशमी जिल्द पर सुनहले अक्षर, चिकना रैपर, रेशमी बुकमार्क—सभी कुछ अनोखा और नेत्ररञ्जक है। आरम्भ में मूल-लेखिका का समालोचनात्मक परिचय और अनुवादक का चित्र। पृष्ठ संख्या लगभग ४००; मूल्य २॥)

११—विमाता

लेखक—श्रीयुत अवधनारायण

यह एक मर्मतलस्पर्शी सामाजिक उपन्यास है। इसके ऐसा हृदयग्राही प्लाट हिन्दी के बहुत ही कम उपन्यासो को नसीब हुआ है। दो-दो संस्करणो की हजारों कापियाँ थोड़े ही समय में बिक जाना इसकी उपयोगिता का सर्टिफिकेट है। तीसरा संस्करण

अत्यंत सुसज्जित एवं सुसम्पादित है। लेखक ने समाज के चरित्रों का जीता-जागता खाका सामने ला रखा है। पढ़ते जाइये और सामाजिक चरित्रों पर विचार कर देखिये कि सचमुच भारतवर्ष में यह यथार्थ घटता है कि नहीं। हम शर्तिया कह सकते हैं कि ऐसा कारुणिक मौलिक उपन्यास हिन्दी मे शायद ही कोई हो। पढकर आप अनायास वाहवा कह उठेंगे। इसका करुण रसात्मक वर्णन पढ़कर आँसू बहने लगते है। सरल मुहावरेदार भाषा और साहित्यिक वर्णन-छटा! सजिल्द, मूल्य २॥)

नवयुवक-हृदय-हार

१—प्रेम

लेखक—आचार्य अश्विनीकुमार दत्त

प्रेम क्या है? आज कल स्कूल और कालेज में, शहर और बाजार में, जो 'प्रेम' हम देखते है, प्रेम क्या वही है? नहीं, कदापि नहीं। वह प्रेम नहीं, मोह है, तृष्णा और वासना है—मृग-मरीचिका है। तो फिर प्रेम है क्या? इसकी विस्तृत व्याख्या देखनी हो, तो इसे पढ़िये। अश्विनी बाबू की सचित्र जीवनी सहित। पृष्ठ १००, द्वितीय सुसम्पादित संस्करण, मूल्य ।=)

२—जयमाल

लेखक—श्रीयुत शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

उपन्यास लिखने में शरत् बाबू अपना जोड़ नहीं रखते। एशिया के महान लेखकों में आपकी गिनती होती है। उन्हीं की 'परिणीता' नामक एक प्रेम-कहानी का यह सुन्दर अनुवाद है।

अनुवादक हैं हिन्दी-संसार के सुपरिचित विद्वान बाबू रामधारी प्रसादजी विशारद—मंत्री, बिहार प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन । पृष्ठ १०० । मूल-लेखक का चित्र । मूल्य ।=)

३—विपंची

रचयिता—साहित्य-भूषण श्रीरामनाथलाल 'सुमन'

इसमें 'सुमनजी' की चुनी-चुनाई उत्तमोत्तम कविताओं का संग्रह है । 'प्रताप' का कहना है कि 'केवल इसकी पहली कविता पर ही एक ही चवन्नी की कौन कहे, कितनी ही चवन्नियाँ—चाँदी की नहीं, सोने की—निछावर कर दी जा सकती हैं ।' छपाई बिल्कुल अनूठी । सादगी में खूबसूरती ! मूल्य ।)

४—कली

(तीन मधुर मस्तिष्कों का मलय-मकरन्द)

यह बिहार-प्रान्त के तीन प्रतिभाशाली नवयुवक कवियों की चमत्कारपूर्ण कविताओं का संग्रह है । इसमें ऐसी-ऐसी चुभीली रचनायें हैं कि पढ़कर आप बरबस कलेजा पकड़ लेंगे । कविताओं में भावुकता और सहृदयता तथा रस-मर्मज्ञता की गहरी छाप है । छपाई-सफाई दर्शनीय । आप जेब में ही रखे फिरेंगे । मू० ।)

५—मधु-संचय

रचयिता—पं० शान्तिप्रिय द्विवेदी

यह पुस्तक नवयुवकों के हृदय को बरबस मुग्ध करने वाली है । छपाई-सफाई बिल्कुल अप-टु-डेट अँगरेजी फैशन की है । इसमें छवि, प्रेम और विरह पर प्राचीन एवं नवीन कवियों की चुनिन्दा रसीली कविताओं का संकलन किया गया है, जिससे यह एक प्रकार का अतीव मनोरंजक पद्यात्मक उपन्यास बन गया है । मूल्य ।=)

६—अन्तर्जगत

लेखक—पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र

यह पुस्तक छायावाद की कविता में जागृति की नई लहर पैदा करनेवाली है। आन्तरिक वेदना का बडा ही कारुणिक शब्द-चित्र है। भावमयी ललित रचना अत्यंत मुग्धकारिणी है। मू० ।)

७—मैत्रीधर्म

लेखक—श्रीयुत बाबू गुलाबराय, एम ए., एल एल. बी.

इसमें मैत्रीधर्म की अत्यन्त सरल सुबोध दार्शनिक व्याख्या की गई है। मित्र और मित्रता के गुण-दोषों की पांडित्यपूर्ण मार्मिक विवेचना ने इस पुस्तक को नवयुवको के लिए बडा ही उपदेशप्रद बना दिया है। झूठी मित्रता के धोखे से बचना हो तो इसे एक बार अवश्य पढ़िये। मू० ।)

८—यूथिका

लेखक—श्रीगोपाल नेवटिया

इसमें आठ अनूठी कहानियाँ हैं—साहित्यिक, सामाजिक और ऐतिहासिक। सभी कहानियाँ शिक्षाप्रद और सरस तथा मनोहारिणी हैं। कई कहानियाँ गद्य-काव्य की तरह अविरल आनन्द देने वाली हैं। पढ़कर और छपाई-सफाई देखकर आप निश्चय ही मुग्ध हो जायँगे। मू० ।≈)

सरल पद्य-माला

१—बाल-विलास

रचयिता—पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय

'माधुरी' लिखती है—इस छोटी सी पुस्तक मे २१ विषयों को लेकर बालकोपयोगी रचना की गई है। विषय ऐसे चुने गये

हैं, जिनके पढ़ने में बालकों का चित्त लगे। भला गिलहरी, बन्दर, कोयल, जुगनू और बूँदियों के विषय में कविता पढ़ने के लिए किस बालक का मन न चाहेगा? हमारा विश्वास है, बालक-वृन्द इसे बड़े चाव से पढ़ेंगे। ऐसी प्रशंसित पुस्तिका का मूल्य ।)

२—कविता-कुसुम

सकलयिता—श्रीरामवृक्षशर्मा बेनीपुरी

हिन्दी के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कवियों की बालोपयोगी कविताओं का इसमें सुन्दर संकलन है। समूची पुस्तक विनय-वाणी, वन-विहार, पवित्र परिवार, पुनीत पर्व, प्रकृति-पर्यवेक्षण, बुढ़ापा बनाम बचपन, वीर-विरुदावली और स्वर्गीय संदेश—इन आठ भागों में विभक्त है। कवियों में अम्बिकादत्त व्यास, प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनाथ भट्ट, 'सनेही', अमीरअली मीर, मन्नन द्विवेदी गजपुरी, अयोध्यासिंह उपाध्याय, लाला भगवानदीन और रघुवीरनारायण मुख्य हैं। पृष्ठ-संख्या ७०, बार्डर-युक्त सुन्दर छपाई, मूल्य ।)

बाल-मनोरंजन-माला

'बालक'-सम्पादक द्वारा लिखित और सम्पादित

१—बगुला-भगत

लड़कों और लड़कियों के लिए बड़ी ही मनोरंजक पोथी। कई मनोरंजक चित्रों से सजाई हुई। इसमें बगुला-भगत की धूर्तता, पोठिया-देवी की चतुराई, केकड़ा-चौबे का साहस, बगुला-भगत और उनकी भगतिन की चोचों का सफाया, भगत का वैराग्य, मानसरोवर के हंसों के गुरु बगुलाजी का भयानक भंडाफोड़ आदि पढ़ते ही लड़के हँसते-हँसते लोटपोट हो जाते हैं। मूल्य ।=)

२—सियार पाँड़े

'देश'—इसे पढ़ने में मन लगता है, बच्चे बड़े चाव से पढ़ेंगे। सभी पिताओं को यह पुस्तक अपने बच्चों को देनी चाहिये। 'मनोरमा'—पुस्तक बच्चों के लिए अच्छी और लाभदायक है। 'कर्मवीर'—बच्चों के मन-बहलाव के लिए यह पुस्तक है। मनोरंजन के साथ-साथ जगत का किंचित् परिचय भी बालकों को इससे होगा। मूल्य ।=)

३—बिलाई मौसी

जिस पुस्तक को देखने के लिए आज एक वर्ष से लोग होहल्ला मचा रहे थे, जिसके लिए हजारों की संख्या में माँगें आ चुकी हैं, वही पुस्तक अनोखी सजधज से छपकर तैयार हो गई है। इसमें एक दर्जन से अधिक रंग-बिरंगे मनोमोहक चित्र हैं। सुन्दर टाइप में बड़ी सफाई से छपी है। मूल्य ॥)

४—हीरामन तोता

इसका कुछ भाग तो 'बालक'-सम्पादक ने स्वयं लिखा है और कुछ भाग उनके मित्र लेखकों द्वारा लिखा गया है। प्रत्येक पृष्ठ में आकर्षण है। एक दर्जन से ऊपर सुन्दर-सुन्दर चित्र हैं, जिन्हें देखकर बालक मुग्ध हो जायँगे। ऐसी सुसज्जित, सुसम्पादित और सचित्र पुस्तक का मूल्य ॥) मात्र।

५—आविष्कार और आविष्कारक

हिन्दी-संसार में सर्वथा अपूर्व और अनूठी पुस्तक है। इसमें संसार के मुख्य-मुख्य आविष्कारों—रेल, तार, जहाज, हवाई जहाज, पनडुब्बी जहाज, ग्रामोफोन, बे-तार का तार, छापाखाना, टेलीफोन, बिजली—और उनके आविष्कारकों के विषय में बड़ी ही

सुबोध और दिलचस्प कहानियाँ हैं, लगभग दो दर्जन चित्र हैं, जिससे विषय के समझने में जरा भी कठिनाई नहीं होती। छपाई सफ़ाई अपूर्व ! मूल्य ॥)

६—संसार के पहलवान (पहला भाग)

यदि आप चाहते हैं कि भारत के बच्चे पहलवान और वीर बनें, उनकी हड्डियाँ इस्पात-सी मजबूत और नसें विद्युद्ग्राही हों, तो इस पुस्तक की एक प्रति प्रत्येक बालक-बालिका के हाथ में दीजिये। यह पुस्तक शरीर को हृष्टपुष्ट बनाने की ओर उनका ध्यान आप ही खींच लेगी। ससार के नामी नामी पहलवानों के सुन्दर सुडौल शरीर देखकर बच्चे आज ही से व्यायाम की ओर झुक पड़ेंगे। लगभग डेढ़ दर्जन चित्र, तो भी मूल्य ॥)

महिला-मनोरंजन माला

१—दुलहिन

लेखिका—श्रीमती चन्द्रमणि देवी

'मनोरमा' लिखती है-यह नई बहुओं के लिए अत्यन्त उपयोगी है। इसे प्रत्येक महिला को पढ़ना चाहिये। लेखनशैली चित्ताकर्षक और अच्छी है। आशा है, लोग इस पुस्तक का आदर करेंगे। 'कर्मवीर' लिखता है—इस पुस्तक में युवती कन्याओं को उचित उपदेश दिया गया है। पुस्तक बहुत उपयोगी है।

नई बहुओं के क्या कर्त्तव्य हैं, यह इसमें सरल भाषा में समझाया गया है। दूसरा संस्करण लाल बोर्डर के बीच नीली रोशनाई से मोटे अक्षरों में परम सुन्दर छपा है। मूल्य ।)

२—सावित्री

लेखिका—स्वर्गीया शिवकुमारी देवी

'प्रताप' लिखता है—छपाई-सफाई अच्छी है। पुस्तक एक बालिका—जो हिन्दी के दुर्भाग्य से अल्पायु में ही स्वर्गवासिनी हो गई—की लिखी हुई है। तथापि भाषा इतनी अच्छी है कि सहसा यह सोचकर आश्चर्य होता है कि एक बालिका इतनी अच्छी भाषा लिख सकती है। 'सम्मेलन-पत्रिका' लिखती है—पौराणिक कथानक के आधार पर इसकी रचना लेखिका ने अच्छे ढंग से की है। नवयुवतियों को इसका अध्ययन कर पातिव्रत धर्म की शिक्षा ग्रहण कर लाभ उठाना चाहिये।

नीली रोशनाई में, लाल बोर्डर के साथ, बड़ी सुन्दरता से शुद्ध छपी है। फिर भी मूल्य केवल ।)

३—अहिल्याबाई

लेखक—पं० जटाधर प्रसाद शर्मा 'विकल'

भारतीय नारियाँ केवल सतीत्व और वीरता ही के लिए प्रसिद्ध नहीं हैं, किन्तु समय पड़ने पर उत्कृष्ट कोटि की शासिका का काम करके भी प्रसिद्धि प्राप्त कर सकती हैं—इसका नमूना देखना हो तो, इस पुस्तक को पढ़िये। अहिल्या सतीत्व की साक्षात् मूर्ति और धर्म की पुण्य प्रतिमा थी। वीरता और चतुरता भी उसमें प्रचुर परिमाण में पाई जाती थी। ईश्वर-भक्ति-परायणा, प्रजावत्सला इस रमणी-शिरोमणि का चरित्र दर्शनीय है। यह भी नीली रोशनाई से बोर्डर के बीच में सुन्दरता से छपी है। भाषा सरल-सुबोध। शैली सरस और मनोरंजक। सर्वांग सुन्दर होने पर भी मूल्य केवल ।)

१—शिवाजी

लेखक—श्रीरामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी, 'बालक'-सम्पादक

'साहित्य-समालोचक' लिखता है—हिन्दूकुलगौरव महाराज शिवाजी का संक्षिप्त जीवनचरित्र अच्छी भाषा में अच्छे ढग से लिखा गया है। छत्रपति शिवाजी के जीवन की सभी मुख्य मुख्य घटनाओं का वर्णन संक्षेप में आ गया है। सचित्र, मू० ।)

२—लंगटसिंह

लेखक—श्रीरामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी, 'बालक'-सम्पादक

'सम्मेलन-पत्रिका' लिखती है—श्रीलंगटसिंह बिहार के उन पुरुष-रत्नो में थे, जिन्होंने अपने ही पुरुषार्थ के बल पर अत्यंत साधारण स्थिति से उठकर असाधारण उन्नति की। इन्हीं महापुरुष का परिचय लेखक ने बड़े ही प्रांजल और हृदयग्राही भाषा में दिया है। सचित्र, मूल्य ।)

३—विद्यापति

लेखक—श्रीरामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी, 'बालक'-सम्पादक

'मनोरमा' लिखती है—इसमें हिन्दी के प्रसिद्ध कवि मैथिल-कोकिल विद्यापति की जीवनी बड़े खोज और मनन के साथ लिखी गई है। बीच-बीच मे उनकी कविता पर भी आलोचनात्मक दृष्टि से विचार किया गया है। हम हिन्दी-काव्य-प्रेमियों तथा अन्य लोगों से इसके पढ़ने की सिफारिश करते हैं। मूल्य ।)

४—माइकेल मधुसूदनदत्त

लेखक—साहित्य-भूषण श्रीरामनाथलाल 'सुमन'

'माधुरी' कहती है—माइकेल मधुसूदन दत्त लोकोत्तर

प्रतिभा-सम्पन्न थे यह सर्वमान्य बात है। बँगला-काव्य-क्षेत्र में इन्होंने एक नवीन पथ का प्रवर्तन किया है। उनका जीवनचरित्र लिखकर अच्छा काम किया गया है। 'मतवाला' कहता है—अवश्य संग्रह योग्य है, अवश्य पढ़ने लायक है। सचित्र, मू० ।)

५—गुरु गोविन्दसिंह

लेखक—श्रीरामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी, 'बालक'-सम्पादक

यह पंजाब के उसी जगत्प्रसिद्ध सिक्खगुरु वीर-शिरोमणि गोविन्दसिंह की ओजस्विनी जीवनी है, जिन्होंने मुगल-साम्राज्य की नींव हिलाकर अपने अलौकिक पुरुषार्थ से भारत में सिक्ख-सम्प्रदाय की विजय-पताका फहरा दी थी। बड़ी ही जोरदार भाषा में लिखी गई है। सचित्र, मूल्य ।)

६—शेरशाह

लेखक—साहित्य-भूषण श्रीरामनाथलाल 'सुमन'

हिन्दी में अभी तक शेरशाह-जैसे सुयोग्य शासक की कोई जीवनी नहीं निकली है। सुमनजी-सरीखे मननशील और खोजी लेखक ने अँगरेजी के अनेक प्रामाणिक इतिहासग्रन्थों के आधार पर इसे लिखा है। शेरशाह कैसा न्यायी और प्रजाप्रेमी बादशाह था—उसके राज्य में शान्ति और सुव्यवस्था का कैसा जबरदस्त सिक्का जमा हुआ था—अपनी कैसी शासनप्रणाली के कारण—वह एक अद्वितीय मुसलमान-शासक था, यह सब जानना हो तो इस जीवनी को अवश्य पढ़िये। मूल्य ।)